विषय-सूची

सुत्तसार-३

भूमिक ा

अङ्गुत्तरनिक ाय

खुद्दक निक ाय

भूमिका

'सुत्तसार' में 'सुत्त पिटक' के सुत्तों का सार है।

भगवान बुद्ध की वाणी तीन पिटकों में सुरक्षित है – विनय पिटक, सुत्त पिटक तथा अभिधम्म पिटक। 'विनय पिटक' में अधिकतर भिक्षुओं-भिक्षुणिओं के लिए विनय का विधान है, 'सुत्त पिटक' में सामान्य साधकों के लिए दिये गये उपदेशों का संग्रह है और 'अभिधम्म पिटक' में विपश्यना साधना में खूब पके हुए साधकों के लिए गूढ़ धर्मोपदेश हैं।

बुद्ध-वाणी में 'सुत्त पिटक' का विशेष महत्त्व है क्योंकि सबसे अधिक सामग्री इसी पिटक में है और हर किसी के लिए उपयोगी भी। विपश्यना साधना सिखाते समय विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्काजी भी इसी पिटक के उद्धरण दे-देकर धर्म समझाते हैं। अभिधम्म पिटक समझने के लिए भी सुत्त पिटक को जानने की जरूरत होती है जैसे छत पर जाने के लिए सीढ़ी की।

सम्यक संबुद्ध की वाणी का एक-एक शब्द सारगर्भित होता है। उसमें से सार निकालना अपने आपको धोखा देना है। अतः किसी भी पाठक के मन में यह भाव कदापि नहीं जागना चाहिए कि सार की बातें छांट-छांट कर यहां प्रस्तुत कर दी गयी हैं और बाकी सब कुछ निःसार है।

यह 'सुत्तसार' सुत्तों का सार इस मायने में है कि सुत्त पिटक में जो कुछ वर्णित है उसका यह स्थूल रूप में अविकल (बिना अपनी ओर से कुछ जोड़े-तोड़े) प्रस्तुतीकरण है। इस सार की तुलना उस बयार से की जा सकती है जो रंग-बिरंगे, सुगंधित पुष्पों के बीच में से लांघ कर मात्र उनकी सुगंध अपने साथ हर ले जाती है। यह 'सुत्तसार' भी भगवान के चित्र-विचित्र, निर्वाण की गंध से सुवासित उपदेशों का एक हल्का-सा **परिचयमात्र** है।

वस्तुतः यह ग्रंथ कोई नयी कृति नहीं है। विपश्यना विशोधन विन्यास द्वारा मूल रूप में प्रकाशित 'सुत्त पिटक' के हर ग्रंथ के साथ उसमें सम्मिलित सुत्तों का सार उनमें दिया गया है। आचार्य श्री सत्यनाराणजी गोयन्का के आदेशानुसार

यह सार इसलिए तैयार किया गया था कि साधक पहले इन्हें पढ़ कर फिर सुत्तों को पढ़ें, तो इससे सुत्त और अधिक अच्छी तरह समझ में आने लगेंगे।

अब आचार्यश्री सत्यनारायणजी गोयन्का ने यह उचित समझा है कि यदि ये सभी सुत्तसार स्वतंत्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर दिये जायँ तो एक अतिरिक्त लाभ यह होगा कि साधकगण जनभाषा के माध्यम से बुद्ध-वाणी को टुकड़ों-टुकड़ों में ही नहीं, बल्कि समग्र रूप से भी सुगमतापूर्वक समझने लगेंगे। आचार्यश्री के इसी चिंतन के फलस्वरूप यह कृति प्रस्तुत की जा रही है।

वर्तमान ग्रंथत्रय केवल सुत्तपिटक के सुत्तों का सार हैं जो कि पाठकों की सुविधा के लिए तीन भागों में प्रकाशित हो रहे हैं। इसके पहले भाग में दीघ एवं मज्झिम निकायों का, दूसरे में संयुत्त निकाय का और तीसरे में अंगुत्तर एवं खुद्दक निकायों का समावेश है।

जब सुत्तसार तैयार किये जा रहे थे, तब विपश्यना विशोधन विन्यास के उद्भट विद्वान डॉ. अंगराज चौधरी ने इनका निरूपण कर इनमें समुचित सुधार किये थे। इसके लिए मैं उनका अत्यंत आभारी हूं।

हमें विश्वास है कि इस कृति से विपश्यी साधकों को धर्म के अनेक अनजाने पक्षों की जानकारी मिलने के अतिरिक्त बुद्ध-वाणी को मूल रूप में पढ़ने की प्रेरणा भी मिलेगी।

सभी साधकगण के प्रति मंगल भावों सहित,

स. ना. टंडन

अङ्गुत्तरनिकाय

पहला निपात

इस निपात में सावत्थी में अवस्थित अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में भगवान बुद्ध के विहार करते समय उनके द्वारा एक-एक धर्म (विषय) को लेकर भिक्षुओं को दिये गये उपदेशों का मुख्यतया संग्रह है। कुछ उपदेश भगवान के प्रमुख शिष्यों द्वारा भी दिये गये हैं।

यह निपात अठारह वर्गों और दो पालियों में विभक्त है, जिनमें अनेक धर्मों के बारे में कहा गया है।

इनमें भगवान ने प्रज्ञप्त किया है कि

* ऐसा कोई एक भी रूप, शब्द, गंध, रस अथवा स्प्रष्टव्य नहीं है जो पुरुष के चित्त को इस प्रकार बांध ले जैसे कि स्त्री का रूप, शब्द, गंध, रस अथवा स्प्रष्टव्य। इसके विपरीत स्त्री के लिए भी सर्वाधिक बंधनकारक है पुरुष का रूप, शब्द, गंध, रस अथवा स्प्रष्टव्य।

* ऐसा एक भी धर्म नहीं है जो असंयत रहने पर इतना अनर्थकारक हो जाता हो जैसा कि यह चित्त। इसके विपरीत ऐसा एक भी धर्म नहीं है जो संयत होने पर इतना अर्थ सिद्ध करता हो जैसा कि यह चित्त।

* ऐसा एक भी धर्म नहीं है जो इतनी जल्दी बदलता हो जैसा कि यह चित्त। इसकी तो उपमा देना भी सहज नहीं है।

* जितने भी अकुशल अथवा कुशल धर्म हैं, वे सभी मन के पीछे चलने वाले हैं। मन उनमें पहले उत्पन्न होता है, और ये बाद में।

* यह जो सगे-संबंधियों का न रहना, अथवा भोग-सामग्री की हानि होना है, यह कोई बड़ी हानि नहीं होती। प्रज्ञा की हानि ही सबसे बड़ी हानि होती है। इसके विपरीत सगे-संबंधियों की वृद्धि, अथवा भोग-सामग्री की वृद्धि, यह कोई बड़ी वृद्धि नहीं होती। प्रज्ञा की वृद्धि ही सबसे बड़ी वृद्धि होती है।

* ऐसा एक भी धर्म नहीं है जो इतना अनर्थ करने वाला हो, जैसा कि प्रमाद। इसके विपरीत ऐसा एक भी धर्म नहीं है जो इतना कल्याण करने वाला हो, जैसा कि अप्रमाद।

* बाहर की बातों में ऐसी एक भी बात नहीं है जो इतनी अनर्थकर हो, जैसी कि कुसंगति। इसके विपरीत ऐसी एक भी बात नहीं है जो इतनी हितकर हो, जैसी कि सत्संगति।

* एक व्यक्ति का लोक में प्रादुर्भाव दुर्लभ है। किस एक व्यक्ति का? तथागत अर्हत सम्यक संबुद्ध का।

* इस बात की तनिक भी संभावना नहीं होती कि एक ही लोक-धातु में एक ही समय दो अर्हत सम्यक संबुद्ध एक साथ उत्पन्न हों। संभावना इसी बात की होती है कि एक लोक-धातु में एक समय एक ही अर्हत सम्यक संबुद्ध उत्पन्न हों।

* एक धर्म को भावित करना और बढ़ाना एकांत निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि और निर्वाण के लिए होता है। कौन से एक धर्म को? बुद्धानुस्मृति, अथवा धर्मानुस्मृति, अथवा संघानुस्मृति, इत्यादि को।

* ऐसी कोई एक भी बात नहीं है जिससे अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न होते हों और उत्पन्न हुए अकुशल धर्मों में वृद्धि होती हो, जैसी कि मिथ्यादृष्टि। इसके विपरीत ऐसी भी कोई एक बात नहीं है जिससे अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न होते हों और उत्पन्न हुए कुशल धर्मों में वृद्धि होती हो, जैसी कि सम्यक दृष्टि।

* जैसे थोड़ा-सा भी गूह (विष्ठा) दुर्गंध ही देता है, वैसे ही थोड़ा-सा भी भव प्रशंसा के योग्य नहीं होता।

* मनुष्य होकर जन्म ग्रहण करने वाले प्राणी अल्पसंख्यक होते हैं। मनुष्येतर योनियों में जन्म ग्रहण करने वाले प्राणियों की संख्या ही अधिक होती है।

* चुटकी बजाने के समय-भर ही चार ध्यानों में से कोई ध्यान, अथवा चार ब्रह्म-विहारों में से किसी पर भी आधारित चित्त-विमुक्ति, का अभ्यास करने वाला व्यक्ति ध्यानी कहलाने लगता है, शास्ता के अनुशासन में रहने वाला, उनके उपदेश के अनुसार आचरण करने वाला। वह व्यक्ति व्यर्थ ही राष्ट्रपिंड खाने वाला नहीं होता। जो व्यक्ति इनका अधिक अभ्यास करते हैं उनका तो कहना ही क्या है!

* 'कायगतास्मृति' एक ऐसा धर्म है जिसको भावित करने और बढ़ाने से इसमें सभी विद्यापक्षीय कुशलधर्म आ जाते हैं। यह अकेला धर्म महान संवेग, महान अर्थ, महान कल्याण, स्मृति-संप्रज्ञान, ज्ञान-दर्शन-प्रतिलाभ, इसी जीवन में सुखविहार और विद्या-विमुक्ति-फल का साक्षात्कार करने का कारण होता है।

भगवान ने यह भी प्रज्ञप्त किया है कि उनके श्रावकों-श्राविकाओं में कौन-कौन से विषय में कौन-कौन अग्र हैं। जैसे – श्रावक वर्ग में से महाप्राज्ञों में सारिपुत्त, ऋद्धिमानों में महामोग्गल्लान, दिव्य चक्षु वालों में अनुरुद्ध, बहुश्रुतों में आनन्द, इत्यादि। ऐसे ही श्राविकाओं में से महाप्रज्ञावतियों में खेमा, ऋद्धिमतियों में उप्पलवण्णा, दिव्य चक्षु वालियों में सकुला, बहुश्रुतों में खुज्जुत्तरा, इत्यादि।

दूसरा निपात

इस निपात में दो-दो धर्मों को लेकर दिये गये उपदेशों का संग्रह है, जो पन्द्रह वर्गों और चार पेय्यालों में विभाजित है।

इस निपात में प्रतिपादित विषय-वस्तु के कुछ उदाहरण हैं

* दो प्रकार के दोष होते हैं – इहलोक-संबंधी तथा परलोक-संबंधी। किसी दुष्कर्म के कारण इहलोक में घोर दंड पाते हुए व्यक्ति को देख कर कोई भिक्षु ऐसे दुष्कर्म से डरता है और उससे बचता है। ऐसे ही कायिक, वाचिक तथा मानसिक दुष्कर्मों के कारण शरीर छूटने पर परलोक में भुगते जाने वाले बुरे फल से डरता है और उनसे बचता है। यह आशा रखनी चाहिए कि इन दोनों प्रकार के दोषों में भय देखने वाला भिक्षु सभी दोषों से मुक्त हो जायगा।

* दो कृष्ण-धर्म हैं और दो शुक्ल-धर्म। कृष्ण-धर्म हैं – निर्लज्जता तथा पापकर्म करने में निर्भयता। शुक्ल-धर्म है – लज्जा तथा पापभीरुता।

* तथागत की धर्म-देशना दो प्रकार की होती है – संक्षिप्त तथा विस्तृत।

* अकुशल को छोड़ना चाहिए, इसे छोड़ना संभव है। कुशल को भावित करना चाहिए, इसे भावित करना संभव है। अकुशल के प्रहाण और कुशल की भावना से हित-सुख होता है।

* दो बातें सद्धर्म के लोप और अंतर्धान का कारण बनती हैं – अव्यवस्थित पद तथा अनर्गल अर्थ। दो बातें सद्धर्म के कायम रहने और लुप्त न होने का कारण बनती हैं – व्यवस्थित पद और उनका सही-सही अर्थ।

* दो मूर्ख होते हैं, दो पंडित। मूर्ख – जो अपने दोष को दोष नहीं मानता और जो दोष मानने वाले को धर्मानुसार क्षमा नहीं करता। पंडित – जो अपने दोष को दोष मानता है और जो अपना दोष मानने वाले को धर्मानुसार क्षमा कर देता है।

* मिथ्या दृष्टि वाले को इन दो में से एक गति की आशा रखनी चाहिए – नरक या पशुयोनि। सम्यक दृष्टि वाले को इन दो में से एक गति की आशा रखनी चाहिए – देवयोनि या मनुष्ययोनि।

* दो विद्याभागीय धर्म हैं – शमथ तथा विपश्यना। शमथ की भावना से चित्त भावित होता है, विपश्यना की भावना से प्रज्ञा भावित होती है। चित्त भावित होने से राग का, और प्रज्ञा भावित होने से अविद्या का प्रहाण हो जाता है।

* माता तथा पिता – इन दो जनों का ऋण चुकाना सहज नहीं होता है, भले ही कोई सौ वर्ष तक उनकी उत्कृष्ट सेवा करता रहे। परंतु यदि कोई इनके अश्रद्धावान होने पर इन्हें श्रद्धा में, दुराचारी होने पर सदाचार में, कृपण होने पर त्याग में और दुष्प्रज्ञ होने पर प्रज्ञा में प्रतिष्ठित करवा दे, तो इतने से उनका उपकार भी होता है और उनका बदला भी चुक जाता है।

* गृहस्थ तथा प्रव्रजित – बुद्ध इन दोनों की मिथ्या-प्रतिपत्ति(मिथ्या आचरण) की सराहना नहीं करते, सम्यक-प्रतिपत्ति की करते हैं। कारण? ये मिथ्या-प्रतिपत्ति के कारण ज्ञेय कुशल-धर्म को प्राप्त नहीं कर सकते, सम्यक-प्रतिपत्ति के कारण कर सकते हैं।

* परिषद दो-दो प्रकार की होती हैं, यथा – उत्तान-गंभीर; गुटों में विभाजित – एकजुट; अनग्र-अग्र; अनार्य-आर्य; नि:सार-सारवान; विषम-सम; अधार्मिक-धार्मिक ;इत्यादि। (भगवान ने इनका आशय समझाने के साथ-साथ यह भी बतलाया है कि इनमें ये-ये परिषद श्रेष्ठ होती हैं – गंभीर, एकजुट, अग्र, आर्य, सारवान, सम तथा धार्मिक।)

* लोक में दो व्यक्ति बहुतों के हित, सुख के लिए उत्पन्न होते हैं – अर्हत सम्यक संबुद्ध तथागत तथा चक्रवर्ती नरेश। ये मानव आश्चर्यजनक होते हैं और इनकी मृत्यु बहुतों के अनुताप का कारण होती है। ये दोनों स्तूप बनवाये जाने के योग्य होते हैं।

* दो बुद्ध होते हैं – सम्यकसंबुद्ध तथा प्रत्येकबुद्ध।

* ये दो बिजली के कड़कनेसे नहीं डरते – क्षीणास्रव भिक्षु तथा मृगराज सिंह।

* सुख दो-दो प्रकार के होते हैं – गृही-प्रव्रजित; काम-नैष्क्रम्य; उपधि-निरुपधि; सास्रव-अनास्रव; सामिष-निरामिष; आर्य-अनार्य; कायिक-चैतसिक प्रीतियुक्त-प्रीतिरहित; इत्यादि। (भगवान ने यह भी बतलाया है कि इनमें ये-ये सुख श्रेष्ठ होते हैं – प्रव्रजित नैष्क्रम्य, निरुपधि, अनास्रव, निरामिष, आर्य, चैतसिक तथा प्रीतिरहित।)

* कुछ दो-दो धर्म हैं – चित्तविमुक्ति-प्रज्ञाविमुक्ति; प्रग्रह-अविक्षेप(उत्साह एवं शांति); नाम-रूप; विद्या-विमुक्ति; भवदृष्टि-विभवदृष्टि; इत्यादि।

* इन दो के आस्रव बढ़ते हैं – जो अनुचित को उचित और उचित को अनुचित समझता है, अथवा अधर्म को धर्म और धर्म को अधर्म समझता है, अथवा अविनय को विनय और विनय को अविनय समझता है। इसके विपरीत इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते हैं; जो अनुचित को अनुचित और उचित को उचित, अथवा अधर्म को अधर्म और धर्म को धर्म, अथवा अविनय को अविनय और विनय को विनय समझता है।

* ये दो आशाएं आसानी से नहीं छोड़ी जा सकतीं – लाभ की आशा और जीवन की आशा।

* लोक में दो प्रकार के व्यक्ति दुर्लभ होते हैं – परोपकार करने वाला और परोपकार को स्मरण रखने वाला।

* श्रद्धावान भिक्षु की सम्यक कामना होनी चाहिए – मैं वैसा होऊं जैसे थे सारिपुत्त – मोग्गल्लान। श्रद्धायुक्त भिक्षुणी की सम्यक कामना होनी चाहिए – मैं वैसी होऊं जैसी थीं खेमा – उप्पलवण्णा।

* इन दो के प्रति अनुचित व्यवहार करने वाला मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष, अवगुणी, सावद्य, विज्ञों द्वारा निंदनीय और बहुत अपुण्य का हेतु होता है – माता तथा पिता, अथवा तथागत तथा तथागत के श्रावक। इन्हीं दो के प्रति उचित व्यवहार करने वाला होता है – पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष, गुणी, अनवद्य, विज्ञों द्वारा स्तुत्य और बहुत पुण्य का हेतु।

* दो प्रकार के दान हैं – आमिष-दान तथा धर्म-दान। इनमें धर्म-दान श्रेष्ठ होता है। ऐसे ही आमिष-यज्ञ और धर्म-यज्ञ में धर्म-यज्ञ, आमिष-त्याग और धर्म-त्याग में धर्म-त्याग, आमिष-भोग और धर्म-भोग में धर्म-भोग, आमिष-संविभाग और धर्म-संविभाग में धर्म-संविभाग, आमिष-अनुकंपा और धर्म-अनुकंपा में धर्म-अनुकंपा श्रेष्ठ होती है।

* कुछ अन्य दो-दो धर्म – ध्यान-समापत्ति की कुशलता और ध्यान से उठने की कुशलता; आर्जव तथा मार्दव; क्षान्ति तथा विनम्रता; इंद्रिय-संवर तथा भोजन की मात्रज्ञता; स्मृति-बल तथा समाधि-बल; शमथ तथा विपश्यना; शील-संपदा तथा दृष्टि-संपदा; स्मृति तथा संप्रज्ञान; इत्यादि।

* इन दो धर्मों से युक्त मानो नरक में डाल दिया गया होता है – क्रोध तथा वैर; ईर्ष्या तथा मात्सर्य; माया तथा शठता; इत्यादि। इसके विपरीत इन दो धर्मों से युक्त मानो स्वर्ग में डाल दिया गया होता है – अक्रोध तथा अवैर; अनीर्ष्या तथा अमात्सर्य; अमाया तथा अशठता; इत्यादि।

* इन दो बातों का लाभ देख कर तथागत ने श्रावकों के लिए शिक्षापदों की प्रज्ञप्ति की है – संघ की भलाई और संघ की सुकरता; गृहियों पर अनुकंपा और पापियों के पक्ष का नाश; सद्धर्म की स्थिति और विनय पर अनुग्रह; इत्यादि।

* द्वेष, मोह, क्रोध, वैर, म्रक्ष, प्रदाश, ईर्ष्या, मात्सर्य, माया, शठता, जड़ता, सारंभ, मान, अतिमान, मद तथा प्रमाद के यथार्थ ज्ञान, परिज्ञान, परिक्षय, प्रहाण, क्षय, व्यय, विराग, निरोध, त्याग तथा प्रतिनिसर्ग के लिए इन दो धर्मों की भावना करनी चाहिए – शमथ तथा विपश्यना।

तीसरा निपात

इस निपात में तीन-तीन धर्मों को लेकर दिये गये उपदेशों का संग्रह है, जो सोलह वर्गों तथा दो पेय्यालों में विभाजित है।

इस निपात में प्रतिपादित विषय-वस्तु के कुछ उदाहरण हैं

* जो कोई भय, उपद्रव, उपसर्ग उत्पन्न होते हैं, वे मूर्ख से ही उत्पन्न होते हैं, पंडित से नहीं।

* मूर्ख के तीन लक्षण होते हैं – बुरा सोचने वाला; बुरा बोलने वाला;

बुरा करने वाला। पंडित के लक्षण होते हैं – भला सोचने वाला; भला बोलने वाला; भला करने वाला।

* भिक्षु को तीन बातें जन्म-भर याद रहती हैं – कहां केश-दाढ़ी मुँड़वा कर, काषायवस्त्र पहन, घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ; कहां चार आर्य सत्यों का यथार्थ ज्ञान हुआ; कहां आस्रवों का क्षय कर, आस्रवरहित चित्तविमुक्ति तथा प्रज्ञा से विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगा।

* तीन बातों से अपना भी अहित होता है और दूसरों का भी – शरीर का दुराचरण; वाणी का दुराचरण; मन का दुराचरण। तीन बातों से न अपना अहित होता है और न दूसरों का –शरीर का सदाचरण; वाणी का सदाचरण; मन का सदाचरण।

* संसार में तीन प्रकार के लोग होते हैं – व्रण-समान चित्त वाले, विद्युत-समान चित्त वाले, वज्र-समान चित्त वाले; अथवा सेवा के अयोग्य, संगति के अयोग्य, परिचर्या के अयोग्य; अथवा मल-मुख, पुष्प-मुख, मधु-मुख; अथवा अंधे, काने, दोनों आंख वाले; औंधी खोपड़ी वाले, पल्ले जैसी प्रज्ञा वाले, बहुल-प्रज्ञ; इत्यादि। (भगवान ने इन पदों का आशय भी स्पष्ट किया।)

* कर्मों की उत्पत्ति के तीन हेतु होते हैं – लोभ, द्वेष, मोह; अथवा अ-लोभ, अ-द्वेष, अ-मोह।

* मद तीन प्रकार के होते हैं – यौवन-मद, आरोग्य-मद, जीवन-मद।

* तीन प्रकार के आधिपत्य होते हैं – आत्माधिपत्य, लोकाधिपत्य, धर्माधिपत्य।

* तीन बातों के होने से श्रद्धावान कुलपुत्र को बहुत पुण्य होता है – श्रद्धा होने से, दातव्य वस्तु होने से, दान देने योग्य व्यक्ति मिल जाने से।

* तीन बातों को पंडितों, सत्पुरुषों ने प्रज्ञापित किया है – दान, प्रव्रज्या, माता-पिता की सेवा।

* संस्कृत धर्मों के तीन लक्षण होते हैं – उत्पत्ति, विनाश, परिवर्तन। अ-संस्कृत धर्मों के लक्षण होते हैं – न उत्पत्ति, न विनाश, न परिवर्तन।

* तीन बातों के लिए प्रयत्न करना चाहिए – अनुत्पन्न पापपूर्ण, अकुशल

धर्मों की अनुत्पत्ति; अनुत्पन्न कुशल धर्मों की उत्पत्ति; दुःखद, तीव्र, कठोर, कटु, प्रतिकूल, बुरी, प्राणहर शारीरिक वेदनाओं के प्रति सहिष्णुता।

* आर्य-विनय में त्रैविद्य उसे कहते हैं जिसको ये तीन विद्याएं प्राप्त हो जाएं – पूर्वजन्मों की अनुस्मृति, दिव्य चक्षु तथा आस्रवों के क्षय का ज्ञान।

* तीन प्रकार के प्रातिहार्य हैं – ऋद्धि-प्रातिहार्य, देशना-प्रातिहार्य, अनुशासनी-प्रातिहार्य।

* तीन प्रकार की कथा-वस्तुएं होती हैं – भूतकाल-संबंधी, भविष्यकाल-संबंधी, वर्तमानकाल-संबंधी।

* तीन अकुशल-मूल हैं – लोभ, द्वेष, मोह। तीन कुशल-मूल हैं – अलोभ, अद्वेष, अमोह।

* उपोसथ तीन प्रकार के होते हैं – गोपाल-उपोसथ, निर्ग्रंथ-उपोसथ, आर्य-उपोसथ। (इनका आशय समझाते हुए भगवान ने कहा कि इन तीनों में आर्य-उपोसथ ही कल्याणकारी होता है, क्योंकि इसमें मैले चित्त को क्रमशः निर्मल किया जाता है। फिर बड़े विस्तार से यह भी समझाया कि चित्त को कैसे निर्मल किया जाता है।)

* जिन पर अनुकंपा करनी हो, और जो बात सुनने को तैयार हों, उन्हें तीन स्थानों पर लाना चाहिए – बुद्ध के प्रति अचल श्रद्धा, धर्म के प्रति अचल श्रद्धा, संघ के प्रति अचल श्रद्धा।

* तीन शिक्षाएं ग्रहण करता हुआ भिक्षु शैक्ष कहलाता है – शील-संबंधी शिक्षा, चित्त-संबंधी शिक्षा, प्रज्ञा-संबंधी शिक्षा। आत्महित चाहने वाले कुलपुत्र जिन डेढ़ सौ 'अधिक' शिक्षापदों का हर पंद्रह दिन में पाठ करते हैं, वे सभी इन तीन शिक्षाओं में आ जाते हैं।

* परिषद तीन प्रकार की होती है – अग्र, व्यग्र, समग्र। (अग्र परिषद में स्थविर भिक्षु न तो अति-परिग्रही होते हैं, न शिथिल; वे अप्राप्त की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। व्यग्र परिषद में भिक्षु झगड़ा करते हैं और एक-दूसरे को मुख-रूपी शक्ति से बींधते रहते हैं। समग्र परिषद में भिक्षु एकजुट होकर, प्रमुदित मन से, बिना विवाद करते हुए, दूध व जल के मिश्रण के समान, एक-दूसरे को प्यार-भरी दृष्टि से देखते हुए विहार करते हैं।)

* जिन तीन अंगों से युक्त भिक्षु आदर करने योग्य, आतिथ्य करने

योग्य, दान-दक्षिणा देने योग्य, हाथ जोड़कर नमस्कार करने योग्य, और लोक का पुण्य-क्षेत्र होता है, वे हैं – वर्ण, बल, गति। (भगवान ने यह भी समझाया कि कोई भिक्षु वर्णवान, बलवान तथा गतिमान कैसे होता है।)

* चित्त को एकाग्र करने की साधना में लगे हुए भिक्षु को समय- समय पर जिन तीन निमित्तों को मन में लाना चाहिए, वे हैं – समाधि-निमित्त, प्रग्रह-निमित्त, उपेक्षा-निमित्त। इससे भिक्षु का चित्त कोमल, कमनीय, प्रभास्वर तथा न टूटने वाला हो जाता है, और सम्यक रूप से आस्रवों के क्षय के लिए प्रयत्नशील हो उठता है।

* आर्य-विनय में गाना 'रोना' होता है, नाचना 'पागलपन' और देर तक दांत निकालकर हँसना 'बचपना'। धर्म में प्रमोद पाने वाले संत पुरुषों का तो मुस्कराना ही पर्याप्त होता है।

* संसार में इन तीन का प्रादुर्भाव दुर्लभ है – तथागत अर्हत सम्यक संबुद्ध, इनके द्वारा उपदिष्ट धर्म का उपदेश, अपने प्रति किये हुए उपकार को मानने वाला।

* तीन विपत्तियां हैं – शील-विपत्ति, चित्त-विपत्ति, दृष्टि-विपत्ति। तीन संपत्तियां हैं : शील-संपत्ति, चित्त-संपत्ति, दृष्टि-संपत्ति।

* तीन प्रकार की शुद्धि होती है – कायिक, वाचिक, मानसिक। मौन भी तीन प्रकार का होता है – कायिक, वाचिक, मानसिक।

* लोभ 'जूठन', क्रोध 'दुर्गंध' और पापपूर्ण अकुशल वितर्क 'मक्खियां' हैं। ऐसा नहीं हो सकता कि कोई भिक्षु अपने आप को जूठा बनाए और उसमें से दुर्गंध न निकले और उस पर मक्खियां न बैठें, न मंडराएं।

* ये तीन छिपे-छिपे रहते हैं, खुले नहीं। कौन तीन? स्त्रियां, ब्राह्मणों के मंत्र, मिथ्या धारणाएं। ये तीन खुले चमकते हैं, ढँके नहीं। कौन तीन? चंद्रमंडल, सूर्यमंडल, तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म।

* संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति होते हैं – पत्थर पर खिंची रेखा के समान, पृथ्वी पर खिंची रेखा के समान, पानी पर खिंची रेखा के समान। (पहले प्रकार का व्यक्ति प्रायः क्रुद्ध हो जाता है और उसका क्रोध भी चिरकाल तक बना रहता है। दूसरे प्रकार का व्यक्ति भी प्रायः क्रुद्ध हो जाता है पर उसका क्रोध

चिरकाल तक नहीं बना रहता है। तीसरे प्रकार का व्यक्ति कड़वा, कठोर बोला जाने पर भी अपने आप से जुड़ा रहता है, सदा प्रसन्न ही रहता है।)

* इन तीन अंगों से युक्त मित्र की संगति करनी चाहिए – जो कठिनाई से दी जाने योग्य वस्तु देता है, कठिनाई से किया जा सकने वाला कार्य करता है, कठिनाई से सहन की जा सकने वाली बात सहन करता है।

* चाहे तथागत उत्पन्न हों या न हों, यह धर्म की स्थिति, धर्म-नियामता ऐसी ही बनी रहती है – सारे संस्कार अनित्य हैं, सारे संस्कार दुःख हैं, सारे धर्म अनात्म हैं।

* तीनों कालों में अर्हत सम्यकसंबुद्ध हुआ करते हैं – कर्मवादी, क्रियावादी, पराक्रमवादी।

* मार्ग तीन प्रकार के होते हैं – शिथिल, कठोर, मध्यम। (पहले मार्ग के अंतर्गत कोई व्यक्ति कामभोगों में दोष न मानते हुए इनमें जा पड़ता है । दूसरे के अंतर्गत वह शरीर को नाना प्रकार के कष्ट पहुँचाता हुआ विहार करता है। तीसरे के अंतर्गत वह लोक में लोभ और दौर्मनस्य को दूर कर, उद्योगशील हो, स्मृतिमान एवं संप्रज्ञानी बना रह, काया में कायानुपश्यी, वेदनाओं में वेदनानुपश्यी, चित्त में चित्तानुपश्यी और धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहरता है।)

इस निपात में भगवान ने गाथाओं के माध्यम से भी धर्म को अनेक प्रकार से प्रकाशित किया है, जैसे

अपने से हीन व्यक्ति की संगति करने वाला स्वयं हीन हो जाता है, समान की संगति करने वाला कभी ह्रास को प्राप्त नहीं होता, अपने से श्रेष्ठ की संगति करने वाला शीघ्र ही उन्नति को प्राप्त होता है। अतः अपने से श्रेष्ठ की ही संगति करनी चाहिए।

संतान के लिए माता-पिता ही 'ब्रह्मा', 'पूर्वाचार्य' कहलाते हैं। पुत्रों के लिए पूजनीय, वे संतान पर अनुकंपा करने वाले होते हैं। इसलिए बुद्धिमान संतान को चाहिए कि उन्हें नमस्कार करे, उनका सत्कार करे, और अन्न, पान, वस्त्र, शयनासन, मालिश, स्नान वा पाद-प्रक्षालन से उनकी परिचर्या करे।

श्रद्धावान उसे कहते हैं जो शीलवानों के दर्शन का इच्छुक हो, सद्धर्म सुनना चाहता हो, मात्सर्यरूपी मल को दूर किये हुए हो।

घर में आग लग जाने पर जो बर्तन उस आग में से बचा लिया जाता है, वही काम आता है। जो आग में जल जाता है, वह काम नहीं आता। ऐसे ही यह संसार जरा एवं मृत्यु से जल रहा है। इसमें से दान देकर जो निकाला जा सकता हो, उसे निकाल ले। दान का बड़ा फल होता है।

जो अभिनिवेश के वशीभूत होकर, अभिमानवश, विरोधी वार्तालाप करते हैं; जो अनार्य-गुण को प्राप्त कर परस्पर छिद्रान्वेषण करते रहते हैं; जो एक-दूसरे के दुर्भाषित, स्खलन, प्रमादवश बोले गए शब्दों तथा पराजय को लेकर प्रसन्न होते रहते हैं; ऐसे लोगों के साथ आर्यपुरुष बातचीत न करे।

प्राणी-हिंसा न करे, तस्करी न करे, असत्य न बोले, सुरापान न करे, अब्रह्मचर्य (मैथुन) से विरत रहे, रात्रि को विकाल-भोजन न करे, माला न पहने, सुगंधि न धारण करे, मंच पर या बिछी-भूमि पर रहे। बुद्ध ने दुःखों के अंतकर इस आठ अंगों वाले उपोसथ को प्रकाशित किया है।

फूल की सुगंध वायु के प्रतिकूल नहीं जाती, न चंदन की, न तगर की, न चमेली की। सत्पुरुषों की सुगंध वायु के प्रतिकूल भी जाती है। (वस्तुतः) सत्पुरुष की सुगंध सभी दिशाओं में खूब फैलती है।

ऋजुमार्ग पर चलने वाले शैक्ष को पहले दुःखों के क्षय का ज्ञान होता है और फिर इसके साथ-ही-साथ निर्वाण-लाभ। तब उस विमुक्तचित्त को यह पता चल जाता है कि नए भव देने वाले संयोजनों का क्षय हो गया है और अब मेरी विमुक्ति अचल हो गयी है।

जिसका शरीर मौन हो, वाणी मौन हो, चित्त मौन हो – ऐसे मौन-युक्त सर्वत्यागी अनास्रव व्यक्ति को 'मुनि' कहते हैं।

इसी निपात में सुप्रसिद्ध 'केसमुत्तिसुत्त' (३,७,५) का समावेश भी हुआ है। इसमें भगवान द्वारा केसमुत्तीय कालामों को दिया गया उपदेश निबद्ध है – "हे कालामो, आओ! तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार कर लो कि यह बात अनुश्रुत है, परंपरागत है, इसी तरह कही गयी है, हमारे धर्मग्रंथ के अनुसार है, तर्कसम्मत है, न्यायसम्मत है, इसका आकार-प्रकार सुंदर है, यह हमारे मत के अनुकूल है, इसे कहने वाले का व्यक्तित्व आकर्षक है, कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे कालामो! जब तुम अपने अनुभव से स्वयं जान लो कि ये बातें अकुशल हैं, सदोष हैं, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं, इनके अनुसार चलने से अहित होता है, दुःख होता है, तब तुम उन बातों को छोड़ दो।"

चौथा निपात

इस निपात में चार-चार धर्मों को लेकर दिये गये उपदेशों का संग्रह है, जो सत्ताईस वर्गों तथा एक पेय्याल में विभाजित है।

इस निपात में प्रतिपादित विषय-वस्तु के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं

* भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि आर्य-शील, आर्य-समाधि, आर्य-प्रज्ञा तथा आर्य-विमुक्ति –इन चार धर्मों का बोध न होने से संसार में मेरा और तुम्हारा दीर्घ कालसे संसरण होता आ रहा है। परंतु अब इन चारों का बोध हो जाने से भव-तृष्णा का उच्छेद हो गया है, भव-रज्जु कट गयी है और आगे नया जन्म नहीं है।

* माता, पिता, तथागत तथा उनका श्रावक –इन चार के प्रति अनुचित व्यवहार करने वाला बहुत अपुण्य कमाता है, और इनके प्रति उचित व्यवहार करने वाला बहुत पुण्य अर्जित करता है।

* चार प्रकार के योग हैं – कामयोग, भवयोग, दृष्टियोग तथा अविद्यायोग। ये आगे चलकर जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु का कारण बनते हैं। अतः इनसे युक्त हुआ व्यक्ति 'अयोगक्षेमी' कहलाता है और इनसे विसंयुक्त हुआ 'योगक्षेमी'।

* चार सम्यक प्रधान हैं –अनुत्पन्न, पापपूर्ण, अकुशल धर्मों को उत्पन्न न होने देने के लिए किया जाने वाला संकल्प वा प्रयास; उत्पन्न हुये पापपूर्ण, अकुशलधर्मों को दूर करने के लिए किया जाने वाला संकल्प वा प्रयास; अनुत्पन्न कुशल धर्मों को उत्पन्न करने के लिए किया जाने वाला संकल्प वा प्रयास; और उत्पन्न हुए कुशल धर्मों को बनाये रखने और बढ़ाने के लिए किया जाने वाला संकल्प वा प्रयास।

* चार धर्मपद हैं – अलोभ, अक्रोध, सम्यक स्मृति तथा सम्यक समाधि। ये अग्र हैं, दीर्घ कालसे चले आ रहे हैं, और किसी भी कालमें संकीर्ण नहीं होते।

* संग्रह करने योग्य चार वस्तुएं हैं – दान, प्रिय वचन, परोपकार तथा समानता का व्यवहार।

* महाप्रज्ञावान महापुरुष इन चार गुणों से युक्त होता है – बहुत लोगों के हित में लगा हुआ; संकल्प-विकल्पोंके विषय में चित्त का स्वामी; इसी जन्म में

सुख-विहार प्राप्त कराने वाले चारों चैतसिक ध्यानों को सहज भाव से प्राप्त करने में समर्थ; और आस्रवों का क्षय कर आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति, प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करने वाला।

* दोण ब्राह्मण के प्रश्नों के उत्तर में भगवान ने कहा कि मैं देवता, गंधर्व, यक्ष तथा मनुष्य – इन चारों में से कोई नहीं हूं। जिन आस्रवों के कारण मैं देव, गंधर्व, यक्ष अथवा मनुष्य होता, वे मुझमें नहीं हैं और न आगे चल कर उनके उत्पन्न होने की कोई संभावना ही रही है। मैं इस लोक में उत्पन्न हुआ हूं, बढ़ा हूं, किंतु इसे जीत कर इससे अलिप्त रह कर विहार करता हूं। मैं 'बुद्ध' हूं।

* इन चार बातों से युक्त भिक्षु पतन के अयोग्य हो जाता है – शीलवान, इंद्रियों में संवर किया हुआ, भोजन की मात्रा का जानकार तथा जागरणशील। ऐसे व्यक्ति को निर्वाण के समीप ही जानना चाहिए।

* समाधि-भावना चार प्रकार की होती है – जिसे भावित करने वा बढ़ाने से इसी जीवन में सुखविहार होता है, अथवा ज्ञानदर्शन का लाभ होता है, अथवा स्मृति-संप्रज्ञान जागता है, अथवा आस्रवों का क्षय होता है। स्मृति-संप्रज्ञान जगाने वाली समाधि-भावना के अंतर्गत साधक की जानकारी में वेदनाएं, संज्ञाएं तथा वितर्क उत्पन्न होते हैं, कुछ देर तक बने रहते हैं और फिर अंतर्धान हो जाते हैं। आस्रवों का क्षय कराने वाली समाधि-भावना के अंतर्गत साधक पांच उपादान-स्कंधों में उदय-व्यय की अनुभूति करता हुआ विहार करता है।

* प्रश्नों को निबटाने के चार ढंग होते हैं – जब प्रश्न का उत्तर 'हां' या 'नहीं में एकांशिक तौर पर दिया जाए, जब प्रश्न का विभाजन करके उत्तर दिया जाए, जब उल्टा प्रश्न पूछ कर उत्तर दिया जाए, और जब कोई उत्तर न दिया जाए।

* ये चार संज्ञा-विपर्यास, चित्त-विपर्यास अथवा दृष्टि-विपर्यास कहलाते हैं – अनित्य को नित्य मानना, दुःख को सुख मानना, अनात्मा को आत्मा मानना और अशुभ (असुंदर) को शुभ (सुंदर) मानना। इसके विपरीत अनित्य को अनित्य, दुःख को दुःख, अनात्मा को अनात्मा और अशुभ को अशुभ मानना संज्ञा-विपर्यास, चित्त-विपर्यास अथवा दृष्टि-विपर्यास नहीं कहलाते हैं।

* यदि किन्हीं पति-पत्नी की यह कामना हो कि हम जीवित रहते हुए भी

एक-दूसरे को देखें और मरणोपरांत भी, तो उन्हें चाहिए कि इन चार मामलों में समान हों – श्रद्धा, शील, त्याग तथा प्रज्ञा।

* सर्पदंशादि से परित्राण पाने के लिए भगवान ने भिक्षुओं को चार सर्पराजकुलों के प्रति निम्न प्रकार से मैत्री-भावना' करने की सीख दी

"विरूपाक्षों के प्रति मेरी मैत्री है, ऐरापथों के प्रति मेरी मैत्री है, छब्यापुत्रों के प्रति मेरी मैत्री है और कण्हागोतमकों के प्रति मेरी मैत्री है।

"बिना पैर वालों के प्रति मेरी मैत्री है, दो पैर वालों के प्रति मेरी मैत्री है, चार पैर वालों के प्रति मेरी मैत्री है, बहुत-से पैर वालों के प्रति मेरी मैत्री है।

"मुझे बिना पैर वाले कष्ट न पहुँचाएं, मुझे दो पैर वाले कष्ट न पहुँचाएं, मुझे चार पैर वाले कष्ट न पहुँचाएं, मुझे बहुत-से पैर वाले कष्ट न पहुँचाएं।

"जितने भी सत्त्व, प्राणी अथवा जंतु हैं, उन सबका कल्याण हो; कोई भी पाप का भागी न हो।

"असीम है बुद्ध, असीम है धर्म, असीम है संघ! ससीम हैं रेंगने वाले जंतु, सांप, बिच्छू, कनखजूरे, मकड़ी, छिपकली, चूहे।

"मैंने आरक्षा कर ली है, परित्राण पा लिया है। जंतु लौट जाएं। मैं भगवान तथा सात सम्यकसंबुद्धों को नमस्कार करता हूं।"

* प्रयत्न चार प्रकार के होते हैं – संवर-प्रयत्न, प्रहाण-प्रयत्न, भावना-प्रयत्न तथा अनुरक्षण-प्रयत्न। इन प्रयत्नों को करने वाला व्यक्ति दुःख के क्षय को प्राप्त कर सकता है।

* इन चार बातों का चिंतन नहीं करना चाहिए – बुद्धों का बुद्ध-विषय, ध्यानी का ध्यान-विषय, कर्म-विपाक तथा लोक की उत्पत्ति। इन विषयों का चिंतन करने से उन्माद अथवा चित्त का विघात हो सकता है।

* जिसमें ये चार बातें होती हैं, वह नरक में डाले गये के समान होता है – हिंसा करने वाला, चोरी करने वाला, कामभोग-संबंधी मिथ्याचार करने वाला और झूठ बोलने वाला। इसके विपरीत, जिसमें ये चार बातें होती हैं, वह स्वर्ग में डाले गये के समान होता है – हिंसा करने से विरत, चोरी करने से विरत, कामभोग-संबंधी मिथ्याचार से विरत और झूठ बोलने से विरत।

* श्रद्धावान कुलपुत्र के लिए ये चार स्थान दर्शनीय होते हैं – जहां

तथागत उत्पन्न हुए, जहां उन्होंने सम्यक संबोधि प्राप्त की, जहां अनुपम धर्मचक्र प्रवर्तित किया, और जहां निरुपाधिशेष निर्वाण-धातु से परिनिर्वाण-लाभ किया। इन स्थानों के दर्शन से संवेग उत्पन्न होता है।

* ये चार भय हैं – जन्म-भय, जरा-भय, रोग-भय, मृत्यु-भय; अथवा अग्नि से भय, जल से भय, राजा से भय, चोर से भय; अथवा आत्म-निंदा का भय, दूसरों द्वारा निंदित होने का भय, दंड मिलने का भय, दुर्गति का भय।

* पानी में उतरने वाले के सामने चार भय होते हैं – लहरों का भय, मगरमच्छ का भय, भंवर का भय और महामच्छ का भय। इसी प्रकार श्रद्धापूर्वक घर से बेघर हुए प्रव्रज्या-प्राप्त भिक्षु को भी यही चार भय होते हैं । (भगवान ने इन भयों का आशय भी समझाया।)

* आभा चार प्रकार की होती है – चंद्रमा की आभा, सूर्य की आभा, अग्नि की आभा और प्रज्ञा की आभा। इनमें प्रज्ञा की आभा ही अग्र (श्रेष्ठ) होती है।

* इंद्रियां चार हैं – श्रद्धा-इंद्रिय, वीर्य-इंद्रिय, स्मृति-इंद्रिय तथा समाधि-इंद्रिय। ऐसे ही, बल चार हैं – श्रद्धा-बल, वीर्य-बल, स्मृति-बल तथा समाधि-बल।

* सार चार प्रकार के होते हैं – शील-सार, समाधि-सार, प्रज्ञा-सार तथा विमुक्ति-सार।

* शय्याएं चार प्रकार की होती हैं – प्रेत-शय्या, कामभोगी-शय्या, सिंह-शय्या तथा तथागत-शय्या।

* भगवान ने अलग-अलग पर्याय को दृष्टि में रख लोक में चार-चार प्रकार के लोगों का होना बतलाया है, जैसे

* क्रोध को महत्त्व देने वाला, किंतु सद्धर्म को महत्त्व न देने वाला; दूसरे की अवमानना को महत्त्व देने वाला, किंतु सद्धर्म को महत्त्व न देने वाला; लाभ को महत्त्व देने वाला, किंतु सद्धर्म को महत्त्व न देने वाला; सत्कार को महत्त्व देने वाला, किंतु सद्धर्म को महत्त्व न देने वाला।

* सद्धर्म को महत्त्व देने वाला, किंतु क्रोध को महत्त्व न देने वाला; सद्धर्म को महत्त्व देने वाला, किंतु दूसरे की अवमानना को महत्त्व न देने वाला;

सद्धर्म को महत्त्व देने वाला, किंतु लाभ को महत्त्व न देने वाला; सद्धर्म को महत्त्व देने वाला, किंतु सत्कार को महत्त्व न देने वाला।

* अंधकार से अंधकार की ओर जाने वाला; अंधकार से प्रकाश की ओर जाने वाला; प्रकाश से अंधकार की ओर जाने वाला; प्रकाश से प्रकाश की ओर जाने वाला।

* नीचे से नीचे की ओर जाने वाला; नीचे से ऊपर की ओर जाने वाला; ऊपर से नीचे की ओर जाने वाला; ऊपर से ऊपर की ओर जाने वाला ।

* अचल-श्रमण; पुंडरीक-श्रमण; पद्म-श्रमण; श्रमणों में सुकुमार श्रमण।

* आत्म-हित में लगा हुआ, किंतु पर-हित में नहीं; पर-हित में लगा हुआ, किंतु आत्म-हित में नहीं; न आत्म-हित में लगा हुआ, न पर-हित में; आत्म-हित तथा पर-हित, दोनों में लगा हुआ।

* प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहरने वाला; द्वितीय ध्यान को प्राप्त हो विहरने वाला; तृतीय ध्यान को प्राप्त हो विहरने वाला; चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहरने वाला।

* मैत्रीयुक्त चित्त से विहार करने वाला; करुणायुक्त चित्त से विहार करने वाला; मुदितायुक्त चित्त से विहार करने वाला; उपेक्षायुक्त चित्त से विहार करने वाला।

* सदोष, दोष-बहुल, अल्प-दोष, निर्दोष।

* अपरिपूर्ण शील, समाधि एवं प्रज्ञा वाला; परिपूर्ण शील, किंतु अपरिपूर्ण समाधि एवं प्रज्ञा वाला; परिपूर्ण शील एवं समाधि, किंतु अपरिपूर्ण प्रज्ञा वाला; परिपूर्ण शील, समाधि एवं प्रज्ञा वाला।

* अपने आपको संतप्त करने में लगा हुआ; दूसरे को संतप्त करने में लगा हुआ; अपने आपको संतप्त करने वाला और दूसरे को भी संतप्त करने वाला; न अपने आपको संतप्त करने वाला, न दूसरे को संतप्त करने वाला।

कई स्थलों पर चार प्रकार के लोगों की तुलना किन्हीं भौतिक पदार्थों अथवा अन्य जीवों से भी की गई है, जैसे

* बादल चार प्रकार के होते हैं – गरजने वाले, किंतु बरसने वाले नहीं; बरसने वाले, किंतु गरजने वाले नहीं; न गरजने वाले, न बरसने वाले; गरजने वाले

तथा बरसने वाले। पुरुष में भी इन बादलों से समानता रखने वाले चार प्रकार के लोग होते हैं।

घड़े चार प्रकार के होते हैं – खाली, किंतु ढके हुए; भरे हुए, किंतु खुले मुँह वाले; खाली, और खुले मुँह वाले; भरे हुए और ढके हुए। इस लोक में भी इन घड़ों से समानता रखने वाले चार प्रकार के लोग होते हैं।

* तालाब चार प्रकार के होते हैं – उथले, किंतु गहरा लगने वाले; गहरे, किंतु उथला लगने वाले; गहरे, और गहरा लगने वाले; उथले, और उथला लगने वाले। इस लोक में भी इन तालाबों से समानता रखने वाले चार प्रकार के लोग होते हैं।

* आम चार प्रकार के होते हैं – कच्चे, किंतु पके हुए लगने वाले; पके हुए, किंतु कच्चे लगने वाले; कच्चे, और कच्चे लगने वाले; पके हुए, और पके लगने वाले। इस लोक में भी इन आमों से समानता रखने वाले चार प्रकार के लोग होते हैं।

* चूहे चार प्रकार के होते हैं – बिल खोदने वाले, किंतु उसमें रहने वाले नहीं; बिल में रहने वाले, किंतु उसे खोदने वाले नहीं; न बिल खोदने वाले, न उसमें रहने वाले; बिल खोदने वाले, और उसमें रहने वाले। इस लोक में भी इन चूहों से समानता रखने वाले चार प्रकार के लोग होते हैं।

* सांड़ चार प्रकार के होते हैं – अपनी गौओं के प्रति चंड, किंतु परायी गौओं के प्रति नहीं; परायी गौओं के प्रति चंड, किंतु अपनी गौओं के प्रति नहीं; अपनी और परायी गौओं के प्रति चंड; न अपनी गौओं के प्रति चंड और न परायी गौओं के प्रति चंड। इस लोक में भी इन वृषभों से समानता रखने वाले चार प्रकार के लोग होते हैं।

भगवान ने प्रत्येक संदर्भ की आवश्यकतानुसार व्याख्या भी की है, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि कोई भी बात किस आशय से कही गयी है।

इस निपात में और भी अनेक चतुष्कों की चर्चा की गयी है, जैसे

* तथागत के चार वैशारद्य;
* चार सूक्ष्मताएं;
* चार आर्य-वंश;

* चार अग्र;
* चार अवस्थाएं;
* चार प्रतिपदाएं;
* चार साक्षात्करणीय धर्म;
* सद्धर्म के लुप्त होने की कारणभूत चार बातें;
* सद्धर्म के लुप्त न होने की कारणभूत चार बातें; इत्यादि।

पांचवां निपात

इस निपात में पांच-पांच धर्मों को लेकर दिये गये उपदेशों का संग्रह है, जो छब्बीस वर्गों तथा तीन पेय्यालों में विभाजित है।

इसमें प्रतिपादित विषय-वस्तु के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं

* पांच शैक्ष-बल हैं – श्रद्धा-बल, लज्जा-बल, (पाप-) भीरुता-बल, वीर्य-बल तथा प्रज्ञा-बल। भिक्षुओं को इनसे अपने आपको मुक्त करने की सीख लेनी चाहिए।

* पांच बल इस प्रकार हैं – श्रद्धा-बल, वीर्य-बल, स्मृति-बल, समाधि-बल तथा प्रज्ञा-बल। श्रद्धा-बल को देखना चाहिए चार स्रोतापत्ति अंगों में, वीर्य-बल को चार सम्यक प्रधानों में, स्मृति-बल को चार स्मृति-प्रस्थानों में, समाधि-बल को चार ध्यानों में और प्रज्ञा-बल को चार आर्य-सत्यों में।

* चित्त के पांच मैल हैं – कामच्छंद, व्यापाद, आलस्य, औद्धत्य-कौकृत्य तथा विचिकित्सा। इनसे मलिन हुआ चित्त आस्रवों के क्षय के लिए सम्यक रूप से समाहित नहीं हो पाता है।

* सम्यक दृष्टि-संपन्न सम्यक संबुद्ध का श्रावक इन पांच बातों को लेकर किसी कृपण व्यक्ति से आगे निकल जाता है – आयु, यश, वर्ण, सुख तथा आधिपत्य। मरणोपरांत वह स्वर्ग में आनंदित होता है।

* इन पांच गुणों से युक्त स्त्री शरीर छूटने पर मनापकायिक देवताओं के साथ जन्म ग्रहण करती है – पति का नित्य पोषण करने वाली, अपने स्वैरी-भाव से पति को रुष्ट न करने वाली, अपने पति के गौरव-भाजन व्यक्तियों का

सम्मान करने वाली, अप्रमादी एवं निरलसा, और पति की इच्छा के अनुरूप आचरण करने वाली।

* दान के पांच शुभ परिणाम होते हैं – (दाता) बहुत लोगों का प्रिय होता है, सत्पुरुषों की संगत होती है, कीर्ति फैलती है, गृहस्थ-धर्म का पालन चलता रहता है, और शरीर छूटने पर सद्गति, स्वर्ग-लाभ होता है।

* पांच समयोचित दान होते हैं – आने वाले अतिथि को दान, जाने वाले पथिक को दान, रोगी को दान, दुर्भिक्ष के समय दान, और नयी उपज वा नये फल आने पर उनकी सर्वप्रथम शीलवानों को भेंट।

* श्रद्धावान कुलपुत्र को पांच लाभ रहते हैं – सत्पुरुष अनुकंपा करते समय पहले श्रद्धावान पर अनुकंपा करते हैं, अश्रद्धावान पर नहीं; समीप आने पर पहले श्रद्धावान के समीप आते हैं, अश्रद्धावान के नहीं; स्वागत करते समय पहले श्रद्धावान का स्वागत करते हैं, अश्रद्धावान का नहीं; धर्मोपदेश देते समय पहले श्रद्धावान को उपदेश देते हैं, अश्रद्धावान को नहीं; और श्रद्धावान शरीर छोड़ने पर सुगति को प्राप्त होता है। जैसे किसी चौराहे पर सुभूमि पर स्थित महान वटवृक्ष चारों ओर से आने वाले पक्षियों का शरणस्थल होता है, वैसे ही श्रद्धावान कुलपुत्र बहुत लोगों का आश्रय होता है, भिक्षुओं का, भिक्षुणियों का, उपासकों का, उपासिकाओं का।

* पांच बातों को ध्यान में रख माता-पिता चाहते हैं कि उनके कुल में पुत्र उत्पन्न हो – वह पाला-पोसा जाकर हमारा पालन-पोषण करेगा; हमारा काम-काज करेगा; कुल-परंपरा चिरस्थायी होगी; उत्तराधिकारी होगा; और हमारे मर जाने पर दान-दक्षिणा देगा।

* ये पांच बातें अच्छी लगने वाली एवं सुंदर हैं किंतु इस लोक में दुर्लभ हैं – आयु, वर्ण, सुख, यश तथा स्वर्ग।

* ये पांच धन हैं – श्रद्धा-धन, शील-धन, श्रुत-धन, त्याग-धन तथा प्रज्ञा-धन।

* ये पांच बातें किसी भी श्रमण, ब्राह्मण, देवता, मार ब्रह्मा अथवा इस लोक में अन्य किसी को प्राप्य नहीं हैं – जराधर्मा जरा को प्राप्त न हो; व्याधिधर्मा व्याधि को प्राप्त न हो; मरणधर्मा मृत्यु को प्राप्त न हो; क्षयधर्मा क्षय को प्राप्त न हो; और नाशधर्मा नाश को प्राप्त न हो।

* इन पांच संज्ञाओं को भावित करने वा बढ़ाने से महान फल प्राप्त होता है – अशुभ-संज्ञा, मरण-संज्ञा, आदीनव-संज्ञा, आहार के विषय में प्रतिकूल-संज्ञा, और समस्त लोक के प्रति अनभिरति-संज्ञा।

* ये पांच संपत्तियां हैं – श्रद्धा-संपत्ति, शील-संपत्ति, श्रुत-संपत्ति, त्याग-संपत्ति तथा प्रज्ञा-संपत्ति। (अथवा) शील-संपत्ति, समाधि-संपत्ति, प्रज्ञा-संपत्ति, विमुक्ति-संपत्ति तथा विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-संपत्ति।

* ये पांच सुख-विहार हैं – प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहार करना, द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करना, तृतीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करना, चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करना, और आस्रवों का क्षय कर आस्रव-रहित चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को इसी जीवन में अपनी अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करना।

जिस भिक्षु में ये पांच बातें होती हैं जैसे संतोष, अल्पाहारिता, जागरूकता, एकान्तवास, और चित्त विमुक्त होने पर उसका प्रत्यवेक्षण करने की शक्ति वह आनापान-स्मृति का अभ्यास करता हुआ अचिर काल में ही अरहंत अवस्था पा लेता है।

* पांच धर्मों से युक्त भिक्षु आह्वान करने योग्य होता है, पाहुना बनाने योग्य होता है, दक्षिणा देने योग्य होता है, हाथ जोड़ने योग्य होता है और लोगों के लिए अनुपम पुण्यक्षेत्र होता है। कौन से पांच धर्म? शील-युक्त होना, समाधि-युक्त होना, प्रज्ञा-युक्त होना, विमुक्ति-युक्त होना और विमुक्तिज्ञानदर्शन-युक्त होना।

* जिस भिक्षु में ये पांच बातें होती हैं, वह इस योग्य होता है कि सम्यक संबोधि प्राप्त कर विहार कर सके –रूपों के आकर्षण को सह सकने वाला, शब्दों के आकर्षण को सह सकने वाला, गंधों के आकर्षण को सह सकने वाला, रसों के आकर्षण को सह सकने वाला और स्प्रष्टव्यों के आकर्षण को सह सकने वाला।

* ये पांच बातें आयु घटाने वाली होती हैं – अपथ्य-सेवन, पथ्य की मात्रा न जानना, कच्चा-पक्का खाना, समय-असमय विचरना और अब्रह्मचारी होना। इसके विपरीत, आयु बढ़ाने वाली ये पांच बातें हैं –पथ्य-सेवन, पथ्य की

मात्रा जानना, अच्छी तरह पका हुआ खाना, समय देख कर विचरना, और ब्रह्मचारी होना।

* ये पांच अपाय-गामी होते हैं, इनका उद्धार नहीं हो सकता –माता की हत्या करनेवाला, पिता की हत्या करनेवाला, अरहंत की हत्या करनेवाला, दुष्ट चित्त से तथागत के शरीर से रक्त बहाने वाला, और संघ में फूट डालने वाला।

* ये पांच सत्पुरुष-दान हैं – श्रद्धापूर्वक दिया जाने वाला दान, सत्कारपूर्वक दिया जाने वाला दान, समय पर दिया जाने वाला दान, मुक्तहस्त होकर दिया जाने वाला दान, और बिना अपने आपको या किसी दूसरे को आघात पहुँचाये दिया जाने वाला दान।

* जिस व्यक्ति में ये पांच बातें होती हैं, वह धर्म सुनता हुआ भी इस योग्य नहीं होता कि कुशल धर्मों के पथ पर चलकर अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर सके। कौन सी पांच बातें? धर्म-कथा का उपहास करनेवाला, धर्म-कथिक का उपहास करनेवाला, अपना उपहास करनेवाला, जड़-मूर्ख दुष्ट-प्रज्ञ, न जानते हुए भी यह मानने वाला कि मैं जानता हूं।

* ये पांच बातें सद्धर्म के लोप का कारण बनती हैं – भिक्षु ध्यान देकर धर्म का श्रवण नहीं करते, ध्यान देकर धर्म का पाठ नहीं करते, ध्यान देकर धर्म को याद नहीं रखते, ध्यान देकर स्मृतिगत धर्मों के अर्थ पर विचार नहीं करते, और न ध्यान देकर उन धर्मों तथा उनके अर्थों को जान कर तदनुसार जीवन बिताते हैं।

* इसके विपरीत, ये पांच बातें सद्धर्म की स्थिति, लोप न होने का कारण बनती हैं –भिक्षु ध्यान देकर धर्म का श्रवण करते हैं, ध्यान देकर धर्म का पाठ करते हैं, ध्यान देकर धर्म को याद रखते हैं, ध्यान देकर स्मृतिगत धर्मों के अर्थ पर विचार करते हैं, और ध्यान देकर उन धर्मों तथा उनके अर्थों को जानकर तदनुसार जीवन बिताते हैं।

* इन पांच धर्मों से युक्त भिक्षु आसक्त हो उठता है – अश्रद्धा, दुराचार, अल्पश्रुतता, आलस तथा दुष्प्रज्ञता। इसके विपरीत, इन पांच धर्मों से युक्त भिक्षु विशारद हो जाता है –श्रद्धा, सदाचार, बहुश्रुतता, अप्रमाद तथा प्रज्ञा।

* इन पांच के उत्पन्न होने पर इन्हें रोकना बहुत कठिन हो जाता है – राग, क्रोध, मोह, प्रतिभा तथा गमिक चित्त।

* इन पांच बातों से युक्त उपासक मानो नरक में गया हुआ होता है – प्राणी-हिंसा करने वाला, चोरी करने वाला, कामभोगों के संबंध में मिथ्याचार करने वाला, झूठ बोलने वाला, और सुरा-मेरय आदि नशीले पदार्थों का सेवन करने वाला।

इसके विपरीत, इन पांच बातों से युक्त उपासक मानो स्वर्ग में गया हुआ होता है – प्राणी-हिंसा से विरत, चोरी से विरत, कामभोग-संबंधी मिथ्याचार से विरत, झूठ बोलने से विरत, और सुरा-मेरय आदि नशीले पदार्थों के सेवन से विरत।

* उपासक के लिए अकरणीय पांच व्यवसाय हैं – अस्त्र-शस्त्रों का व्यापार, प्राणियों का व्यापार, मांस का व्यापार, मद्य का व्यापार तथा विष का व्यापार।

* जिस वाणी में ये पांच बातें होती हैं, वह वाणी सुभाषित होती है – समय पर बोली गयी, सत्य, कोमल, सार्थक तथा मैत्रीपूर्ण चित्त से निकाली हुई।

* धर्म-श्रवण के पांच शुभ परिणाम होते हैं – पूर्व में न सुनी हुई बात सुनने को मिलती है, सुनी हुई बात स्पष्ट हो जाती है, संशय मिट जाता है, दृष्टि का मिथ्यात्व जाता रहता है, और चित्त प्रसन्न होता है।

इस निपात में और भी अनेक पंचकों की विस्तृत रूप से चर्चा की गयी है, जैसे

* पांच प्रकार के योद्धा
* पांच प्रकार के शास्ता
* पांच प्रकार के ब्राह्मण
* पांच भावी भय
* संबोधि प्राप्त करने से पूर्व तथागत के पांच महास्वप्न
* स्मृति व संप्रज्ञान के बिना सोने के दुष्परिणाम (और स्मृति व संप्रज्ञान से युक्त हो सोने के शुभ परिणाम)
* दातुन न करने के पांच दुष्परिणाम (और दातुन करने के पांच शुभ परिणाम)
* बहुत बोलने के पांच दुष्परिणाम (और थोड़ा बोलने के पांच शुभ परिणाम)

* अव्यवस्थित चारिका के पांच दुष्परिणाम (और व्यवस्थित चारिका के पांच शुभ परिणाम)

* दुश्चरित्रता के पांच दुष्परिणाम (और सच्चरित्रता के पांच शुभ परिणाम); इत्यादि।

छठा निपात

इस निपात में छः-छः धर्मों को लेकर दिये गये उपदेशों का संग्रह है, जो बारह वर्गों तथा एक रागपेय्याल में विभाजित है।

इसमें प्रतिपादित विषय-वस्तु के कतिपय उदाहरण निम्न प्रकार से हैं :

* जिस भिक्षु में ये छः बातें होती हैं, वह सत्कार के योग्य होता है, आतिथ्य के योग्य होता है, दक्षिणा के योग्य होता है, हाथ जोड़कर नमस्कार किये जाने योग्य होता है और लोगों के लिये अनुपम पुण्यक्षेत्र होता है। कौनसी छः बातें? जब वह आंख से किसी रूप को देखता है तब न तो वह प्रफुल्लित हो उठता है, न खिन्न ; बल्कि वह स्मृतिमान एवं संप्रज्ञानी बना रह कर उपेक्षाभाव से विहार करता है। ऐसे ही जब वह कान से कोई शब्द सुनता है, नाक से कोई गंध सूंघता है, जीभ से कोई रस चखता है, शरीर से किसी का स्पर्श करता है अथवा मन से किसी विषय को ग्रहण करता है तब न तो वह प्रफुल्लित हो उठता है, न खिन्न; बल्कि वह स्मृतिमान एवं संप्रज्ञानी बना रह कर उपेक्षा भाव से विहार करता है।

* ये छः अनुस्मृति स्थान हैं – बुद्धानुस्मृति, धर्मानुस्मृति, संघानुस्मृति, शीलानुस्मृति, त्यागानुस्मृति तथा देवतानुस्मृति।

* ये छः मोक्ष प्राप्त कराने वाली धातुएं हैं – मैत्री-चित्तविमुक्ति (द्वेष से), करुणा-चित्तविमुक्ति (खेद से), मुदिता-चित्तविमुक्ति (अरुचि से), उपेक्षा-चित्तविमुक्ति (राग से), अनिमित्त-चित्तविमुक्ति (सब निमित्तों से) और अहंकार का नाश (संदेह से)।

* भिक्षुओं की उन्नति-कारक ये छः बातें हैं – कार्य-बहुल न होना, वार्तालाप-बहुल न होना, निद्रा-बहुल न होना, मंडली-बहुल न होना, सुवचनीय होना और कल्याणमित्रता।

* ये छः अनुपम बातें हैं – अनुपम दर्शन, अनुपम श्रवण, अनुपम लाभ,

अनुपम शिक्षा, अनुपम परिचर्या तथा अनुपम अनुस्मरण। (भगवान ने प्रत्येक का आशय भी स्पष्ट किया।)

* ये छः बातें विद्यापक्षीय हैं – अनित्य-संज्ञा, अनित्य के प्रति दुःख-संज्ञा, दुःख के प्रति अनात्म-संज्ञा, प्रहाण-संज्ञा, विराग-संज्ञा तथा निरोध-संज्ञा।

* ये बींधने वाले धर्म-पर्याय हैं – कामनाओं को जानना, कामनाओं के निदान(कारण) को जानना, कामनाओं के नाना स्वरूपों को जानना, कामनाओं के विपाक को जानना, कामनाओं के निरोध को जानना, और कामनाओं के निरोध की ओर ले जाने वाली प्रतिपदा को जानना।

और उसी प्रकार इन्हें भी जानना –वेदना, संज्ञा, आस्रव, कर्म तथा दुःख को।

भगवान ने यह भी स्पष्ट किया कि हर बात किस आशय से कही गयी है, जैसे:

वेदनाएं तीन प्रकार की होती हैं – सुखद, दुःखद एवं अदुःखद- असुखद। इनका निदान(कारण) होता है – 'स्पर्श'। इसके नाना स्वरूप होते हैं – सामिष सुखद, निरामिष सुखद, सामिष दुःखद, निरामिष दुःखद, सामिष अदुःखद-असुखद तथा निरामिष अदुःखद-असुखद। इनका विपाक इसमें होता है जब कोई व्यक्ति इनको भोगता हुआ पुण्य अथवा अपुण्य से प्राप्त होने वाले जन्म को ग्रहण करता है। 'स्पर्श' का निरोध ही वेदना का निरोध होता है। और वेदना का निरोध प्राप्त कराने वाली प्रतिपदा यही है जिसे कहते हैं आर्य अष्टांगिक मार्ग। जो व्यक्ति इन सब बातों को यथार्थतः जान लेता है, वही वेदना का निरोध प्राप्त करानेवाले निर्वेधिक ब्रह्मचर्य को प्रज्ञापूर्वक जानता है।

इस निपात में निम्नांकित विषयों के बारे में भी चर्चा हुई है।

–मरणानुस्मृति की भावना आस्रवों का क्षय करने के लिए, अप्रमत्त होकर किस प्रकार की जानी चाहिए।

–भय, दुःख, रोग, गंड (व्रण), संग तथा पंक –ये सारे शब्द कामनाओं के ही पर्याय हैं। पृथग्जन इनमें डूबे रहते हैं।

– कौन सी छः बातें विवादमूलक होती हैं।

–क्षत्रियों, ब्राह्मणों, गृहपतियों, स्त्रियों, तस्करों तथा श्रमणों के जीवन का क्या अभिप्राय होता है, उनका प्रधान विचार क्या होता है, और उनका दृढ़ निश्चय, अभिनिवेश तथा संतुष्टि किस-किस बात में निहित रहती है।

–समय समय पर धर्म-श्रवण करने और उनके अर्थों पर विचार करने के कौन से छः शुभ परिणाम होते हैं।

–'स्पर्श' एक अंत है और 'स्पर्श-समुदय' दूसरा, 'स्पर्श-निरोध' बीच में है। तृष्णा सियून(दर्जिन) है, क्योंकि यही जिस-किसी जन्म के साथ सी देती है। परंतु जो व्यक्ति इस बात को अभिज्ञा और परिज्ञा के स्तर पर जान लेता है, वह इसी जीवन में दुःखों का अंत कर लेता है।

–तथागत के कौन से छः बल होते हैं जिनसे युक्त होने के कारण वे उच्च स्थान पाते हैं, परिषदों में सिंहनाद करते हैं और ब्रह्मचक्र को प्रवर्तित करते हैं।

–किन छः बातों को छोड़े बिना अनागामिता अथवा अरहत्व की प्राप्ति संभव अथवा असंभव होती है।

–किन छः बातों के होने से कोई व्यक्ति बलवान समाधि वाला होता है, और किन छः बातों के होने से दुर्बल समाधि वाला।

–किन छः बातों से कोई व्यक्ति इस लोक में दुःखी रहता है, और किन छः बातों से सुखी।

–किन छः बातों को छोड़े बिना अरहत्व का साक्षात्कार करना असंभव रहता है, और किन छः बातों को छोड़ देने से अरहत्व का साक्षात्कार कर पाना संभव हो जाता है।

–किन छः बातों के कारण कोई व्यक्ति नरक में डाले समान हो जाता है, और किन छः बातों के कारण स्वर्ग में डाले समान।

–सम्यक दृष्टि-प्राप्त व्यक्ति में कौनसी छः बातें प्रहीण हो गयी रहती हैं।

– संसार में किन छः का प्रादुर्भाव दुर्लभ है।

सातवां निपात

इस निपात में सात-सात धर्मों को लेकर दिये गये उपदेशों का संग्रह है, जो दस वर्गों तथा एक रागपेय्याल में विभाजित है।

इसमें प्रतिपादित विषयवस्तु के कतिपय उदाहरण निम्न प्रकार से हैं

* जिस भिक्षु में ये सात बातें होती हैं, वह अपने स-ब्रह्मचारियों को अच्छा लगता है – लाभ की इच्छा न करने वाला, सत्कार की इच्छा न करने वाला, प्रसिद्धि की इच्छा न करने वाला, लज्जाशील, पापभीरु, अल्पेच्छ तथा सम्यक दृष्टिसंपन्न।

* ये सात बल हैं – श्रद्धा-बल, वीर्य-बल, लज्जा-बल, पापभीरुता-बल, स्मृति-बल, समाधि-बल तथा प्रज्ञा-बल। जो कोई इन बलों से बलवान होता है, वह सुख का जीवन जीता है।

* ये सात धन हैं – श्रद्धा-धन, शील-धन, लज्जा-धन, पापभीरुता-धन, श्रुत-धन, त्याग-धन तथा प्रज्ञा-धन। जिस किसी के पास ये धन हों, वह दरिद्र नहीं होता।

* ये सात अनुशय हैं – कामराग-अनुशय, प्रतिहिंसा-अनुशय, दृष्टि-अनुशय, विचिकित्सा-अनुशय, मान-अनुशय, भवराग-अनुशय तथा अविद्या-अनुशय। इन अनुशयों के पूर्ण रूप से उन्मूलन के लिए ब्रह्मचर्यवास किया जाता है।

* संसार में ये सात प्रकार के लोग पानी की उपमा के समान विद्यमान होते हैं – डूबा हुआ डूबा ही रहता है; ऊपर आकर फिर डूब जाता है; ऊपर आकर पानी पर स्थित रहता है; पानी के ऊपर आकर विशेष रूप से देखता है; पानी के ऊपर आकर तैरता है; पानी के ऊपर तैर कर स्थान-विशेष पर पहुँच कर रुक जाता है; और ऊपर आकर, तैर कर, पार जाकर स्थल पर जा खड़ा होता है। (भगवान ने इन कथनों का आशय भी स्पष्ट किया।)

* ये सात बातें भिक्षु की उन्नति के लिए होती हैं – शास्ता का गौरव, धर्म का गौरव, संघ का गौरव, शिक्षाओं का गौरव, समाधि का गौरव, अप्रमाद का गौरव तथा मैत्रीभाव का गौरव।

* संगति करने योग्य मित्र में ये सात गुण होते हैं – कठिनाई से दी जाने वाली वस्तु को देता है; दुष्कर कार्य करता है; असह्य दुरुक्त वचन भी सह लेता है; अपना रहस्य उस पर प्रकट कर देता है; उसका रहस्य छिपा कर रखता है; मुसीबत पड़ने पर साथ नहीं छोड़ता; और निर्धन हो जाने पर भी अवहेलना नहीं करता।

* जिस भिक्षु में ये सात बातें होती हैं, चित्त उसके वश में रहता है, वह चित्त के वश में नहीं रहता –समाधि-कुशलहोना, समाधि कीसमापत्ति में कुशल होना, समाधि की स्थिति में कुशल होना, समाधि से उठने में कुशल होना, समाधि कासुफलपाने में कुशलहोना, समाधि कीगोचरता में कुशलहोना, और समाधि के अभिनीहार (अधिष्ठान) में कुशल होना।

* बुद्धशासन में केवल वर्षगणना से ही किसी भिक्षु को विशिष्ट घोषित नहीं किया जाता। इन सात विशेषताओं के होने पर ही ऐसी घोषणा की जाती है –श्रद्धावान होना, लज्जाशील होना, पापभीरु होना, बहुश्रुत होना, प्रयत्नशील होना, स्मृतिमान होना, तथा प्रज्ञावान होना।

* ये सात प्रकार की अग्नियां हैं – राग-अग्नि, द्वेष-अग्नि, मोह-अग्नि, सत्कारभाजन-अग्नि, गृहपति-अग्नि, दक्षिणार्ह-अग्नि तथा काष्ठ-अग्नि।

* इन सात संज्ञाओं को भावित करने या बढ़ाने से महान फल प्राप्त होता है – अशुभ-संज्ञा, मरण-संज्ञा, भोजन के बारे में प्रतिकूल-संज्ञा, सभी लोकों के बारे में अनभिरति-संज्ञा, अनित्य-संज्ञा, अनित्य के प्रति दुःख-संज्ञा, और दुःख के प्रति अनात्म-संज्ञा।

* इन सात धर्मों से युक्त हुआ भिक्षु अचिरकाल में ही आस्रवों का क्षय कर आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा से विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करने लगता है – श्रद्धावान होना, शीलवान होना, बहुश्रुत होना, ध्यानी होना, प्रयत्नशील होना, स्मृतिमान होना, और प्रज्ञावान होना।

* पुरुष की सात प्रकार की पत्नियां हो सकती हैं – वधक-जैसी, चोर-जैसी, मालकिन-जैसी, माता-जैसी, बहन-जैसी, सहेली-जैसी, और दासी-जैसी। (भगवान ने प्रत्येक का आशय भी स्पष्ट किया।)

* इन सात उपायों का आश्रय लेने से झगड़े-मुकद्दमे शांत हो जाते हैं – पक्षों की उपस्थिति में निर्णय देना, स्मृति के अनुसार निर्णय देना, अमूढ़ता के अनुसार निर्णय देना, प्रतिज्ञा (स्वीकारोक्ति) के अनुसार निर्णय देना, बहुमत के अनुसार निर्णय देना, उसके पाप-कर्म के अनुसार निर्णय देना और पक्षों की सहमति से मुकद्दमा समेट लेना।

* इन सात धर्मों के छिन्न-भिन्न हो जाने से कोई व्यक्ति 'भिक्षु' होता है

– सत्कायदृष्टि, विचिकित्सा, शील-व्रतों से गहरी आसक्ति, राग, द्वेष, मोह, और मान।

इन्हीं सात धर्मों के शांत हो जाने से कोई व्यक्ति 'श्रमण' और बाहर कर दिए जाने से 'ब्राह्मण' हो जाता है। इन्हीं धर्मों से स्नात होने से 'स्नातक', इन्हें (वेदनाओं के स्तर पर) विदित कर लेने से 'वेदगू' और इनसे दूर-परे चले जाने से 'आर्य' हो जाता है।

इस निपात में निम्नांकित के बारे में भी चर्चा हुई है

सात धर्म, जिनके अनुसार आचरण करने से भिक्षुओं की उन्नति ही होती है, अवनति नहीं।

सात बातें, जो किसी उपासक की उन्नति अथवा अवनति का कारण होती हैं।

विज्ञान (चित्त) की सात प्रकार की स्थितियां।

सात पुरुष-गतियां तथा प्रत्ययरहित परिनिर्वाण।

किन उपायों से तंद्रा का निवारण किया जा सकता है।

कौनसी बातें बैरियों को अच्छी लगती हैं और किसी के भी मन में क्रोध जगा देती हैं।

किन सात बातों से कोई भिक्षु 'विनयधर' होता है, और किन सात बातों से यह 'सुशोभित' होता है।

कौन से सात 'सद्धर्म' हैं, और कौन से सात 'असद्धर्म'।

इस निपात में 'क्रोध' के दुष्परिणामों का मार्मिक वर्णन भी मिलता है

क्रोध करने वाला दुर्वर्ण होता है, दुःखी होकर सोता है, और अनर्थ को प्राप्त होता है। क्रोध-रूपी मद से उन्मत्त हुए व्यक्ति का ऐश्वर्य जाता रहता है। उसके जातिभाई और मित्रजन उससे किनारा कर लेते हैं।

क्रोध अनर्थकारी होता है, इससे चित्त में कोप जागता है और भीतर-ही-भीतर भय उत्पन्न होता है। यह जिसके सिर पर सवार हो जाता है वह भला-बुरा नहीं समझता, धर्म को देख नहीं पाता और निपट अंधा हो जाता है। क्रोध उतर जाने पर वह आग से जलाये गये के समान अनुताप अनुभव करता रहता है।

क्रोधके वशीभूत व्यक्ति को न लज्जा होती है, न पाप-भीरुता। वह पिता की हत्या कर डालता है, माता की भी, श्रेष्ठ पुरुष की भी, अज्ञानी की भी।

क्रोधसे मूर्च्छित हुए व्यक्ति खड्ग से आत्मघात करलेते हैं, विष खा लेते हैं, गले में फंदा डाल कर मर जाते हैं और गिरि-गह्वरों में गिर कर अपने प्राण गँवा देते हैं।

बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह इंद्रिय-संयम, प्रज्ञा, वीर्य तथा सम्यकदृष्टि से क्रोध-रूपी मृत्यु-पाश की जड़ काट दे।

आठवां निपात

इस निपात में आठ-आठ धर्मों को लेकर दिये गये उपदेशों का संग्रह है, जो दस वर्गों तथा एक रागपेय्याल में विभाजित है।

इसमें प्रतिपादित विषय-वस्तु के कतिपय उदाहरण निम्न प्रकार से हैं:

* जिस भिक्षु में ये आठ बातें होती हैं, वह अपने साथियों को अच्छा नहीं लगता है। कौन सी आठ बातें? – अप्रिय जनों की प्रशंसा करता है और प्रिय जनों की निंदा; लाभ की कामना करता है और सत्कार की भी; लज्जारहित होता है और पाप से भय नहीं खाता; बुरी इच्छाओं वाला होता है और मिथ्या दृष्टि वाला भी।

* यह विश्व इन आठ लोक-धर्मों के अनुसार परिवर्तित होता रहता है – लाभ, अलाभ, यश, अपयश, निंदा, प्रशंसा, सुख तथा दुःख। स्मृति और मेधा से युक्त व्यक्ति इनके परिवर्तनशील स्वभाव को समझता है और इनसे प्रभावित नहीं होता है।

* ये आठ प्रकार के मैल हैं – पाठ न करना (वेद-) मंत्रों का मैल है, आलस्य गृहस्थ-जीवन का मैल है, तंद्रा शरीर के वर्ण का मैल है, प्रमाद रक्षक का मैल है, दुश्चरित्रता स्त्री का मैल है, लोभ दाता का मैल है, इहलोक तथा परलोक में जितने पाप-धर्म हैं वे सब मैल हैं, अविद्या सबसे बड़ा मैल है।

* जिस भिक्षु में ये आठ बातें हों, वह 'दूत' बना कर भेजे जाने के योग्य होता है – सुनने वाला हो, सुनाने वाला हो, सीखने वाला हो, धारण करने वाला हो, जानने वाला हो, जनाने वाला हो, समीचीन और असमीचीन की परख करने में कुशल हो और कलह करने वाला न हो।

* ये आठ प्रकार के बल हैं – रोना बच्चों का, क्रोध स्त्रियों का, शस्त्र चोरों का, ऐश्वर्य राजाओं का, क्षुब्ध होना मूर्खों का, ध्यान करना बुद्धिमानों का, मीमांसा करना बहुश्रुतों का और सहिष्णुता श्रमणों तथा ब्राह्मणों का।

* ये आठ महापुरुष-वितर्क हैं – यह धर्म अल्पेच्छ के लिए है, महेच्छ के लिए नहीं; संतुष्ट के लिए है, असंतुष्ट के लिए नहीं; एकांतप्रिय के लिए है, भीड़-भाड़ में रहने वाले के लिए नहीं; प्रयत्नशील के लिए है, तंद्रिल के लिए नहीं; उपस्थित-स्मृति (सावधान) के लिए है, मूढ़-स्मृति (असावधान) के लिए नहीं; एकाग्रचित्त के लिए है, विक्षिप्तचित्त के लिए नहीं; प्रज्ञावान के लिए है, दुष्प्रज्ञ के लिए नहीं। (भगवान ने इसका आशय भी समझाया।)

* ये आठ प्रकार के दान हैं – (प्रतिग्राहक के) आने पर दान देना; भय के मारे दान देना; 'मुझे दिया था' इसलिए दान देना; 'मुझे देगा', यह सोच कर दान देना; 'दान देना अच्छा है', इस विचार से दान देना; 'मैं (भोजन) पकाता हूं, ये नहीं पकाते, यह उचित नहीं कि पकानेवाला न पकानेवाले को दान न दे' यह सोचकर दान देना; 'यह दान देने से मेरा यश फैलेगा', इस भावना से दान देना; और चित्त को अलंकृत, परिष्कृत करने के लिए दान देना।

* ये आठ सत्पुरुष दान हैं – पवित्र वस्तु का दान; उत्तम वस्तु का दान; समय पर दिया गया दान; उचित वस्तु का दान; सोच-विचार कर दिया गया दान; सतत दान; दान देते समय चित्त की प्रसन्नता; और दान दे चुकने पर आत्मविभोरता।

* 'उपोसथ' के ये आठ अंग हैं – प्राणी-हिंसा न करना; चोरी न करना; झूठ न बोलना; मद्यपान न करना; अब्रह्मचर्य अथवा मैथुन-कर्म से विरत होना; रात्रि को विकाल-भोजन न करना; न माला पहनना, न सुगंधि का लेप करना; और (नीची) खाट अथवा धरती के बिछौने पर सोना। (भगवान ने यह भी बतलाया कि आठ अंगों वाले 'उपोसथ' व्रत का पालन करना महान फलदायी होता है, और यह भी बताया कि क्यों होता है।)

* जिस स्त्री में ये आठ बातें हों, वह धर्म में ठहरी हुई, सत्यभाषिणी, शीलवती नारी कहलाती है – अपने कर्मों की सम्यक व्यवस्थापिका, परिजनों का संग्रह करनेवाली, पति की इच्छानुसार आचरण करनेवाली, कमाये हुए की रक्षा करनेवाली, श्रद्धा-युक्त, शीलसंपन्न, उदारचेता तथा मात्सर्यरहित। ऐसी नारी हर समय परलोक-पथ को प्रशस्त करती रहती है।

* ये आठ व्यक्ति आदर करने योग्य, सत्कार करने योग्य, दक्षिणार्ह, हाथ जोड़ कर अभिवादन करने योग्य और लोगों के लिए अनुपम पुण्यक्षेत्र होते हैं – स्रोतापन्न, स्रोतापत्ति-फल के साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न, सकृदागामी, सकृदागामिता-फल के साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न, अनागामी, अनागामिता-फल के साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न, अर्हत तथा अरहत्व-फल के साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न।

इस निपात में निम्नांकित विषयों के बारे में भी चर्चा हुई है:

जितना भी सुभाषित है, वह सभी भगवान अर्हत सम्यक संबुद्ध का है। अन्य सभी लोग उसी में से ले-लेकर धर्मोपदेश देते हैं।

– एक दृष्टि से यह भी कहा जा सकता है कि श्रमण गौतम नीरस, भोगरहित, अक्रियावादी, उच्छेदवादी, घृणा करने वाला, दमन करने वाला, तपस्वी तथा अप्रगल्भ है। (भगवान ने ऐसा कहा जाने का कारण भी सुस्पष्ट किया।)

–निर्ग्रंथ श्रावक सिंह सेनापति को विरज, विमल धर्मचक्षु का प्राप्त होना।

–अच्छे घोड़े की आठ बातें, और ऐसे ही सत्कार-योग्य, दक्षिणार्ह, लोगों के लिए पुण्य-क्षेत्र भिक्षु की आठ बातें।

–किन आठ उपायों से स्त्री पुरुष को और पुरुष स्त्री को अपने-अपने बंधन में बांध लेते हैं।

–महासमुद्र की, और इसी प्रकार धर्मविनय की, आठ-आठ आश्चर्यकारक, अद्भुत बातें।

– किन आठ बलों से क्षीणास्रव भिक्षु अपने आप को 'क्षीणास्रव' होना जतलाता है।

–कौनसी आठ बातों से कोई स्त्री प्राण छोड़ने पर 'मनापकायी देवियों' की संगति में उत्पन्न होती है।

–महापजापति गोतमी द्वारा भगवान की आठ गंभीर शर्तें स्वीकार कर लेने पर उसकी उपसंपदा।

– भोग के साधनों की प्राप्ति और विनाश के चार-चार रास्ते।

–बोधि प्राप्त करने से पूर्व भगवान बुद्ध को आठ प्रकार से देवताओं के बारे में ज्ञान-दर्शन।

–आठ अभिभूत आयतन, आठ विमोक्ष, आठ आर्य व्यवहार, आठ अनार्य व्यवहार, आठ परिषदें, भारी भूकंप के आठ हेतु, आठ संपदाएं, आठ उत्साह-वार्ताएं, इत्यादि।

भगवान ने भिक्षुओं को यह भी समझाया कि

* सभी धर्मों का मूल है 'छंद' (संकल्प);
* सभी धर्म मन से उत्पन्न होते हैं;
* सभी धर्मों का उदय स्पर्श से होता है;
* सभी धर्म वेदनाओं में आ मिलते हैं;
* सभी धर्मों में समाधि प्रमुख है;
* सभी धर्मों में स्मृति प्रधान है;
* सभी धर्मों में प्रज्ञा श्रेष्ठतम है;
* सभी धर्मों का सार है –'विमुक्ति'।

नौवां निपात

इस निपात में मुख्यतया नौ-नौ धर्मों को लेकर दिये गये उपदेशों का संग्रह है, जो नौ वर्गों तथा एक रागपेय्याल में विभाजित है।

इसमें प्रतिपादित विषय-वस्तु के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार से हैं

* क्षीणास्रव अर्हत के लिए ये नौ बातें कर पाना असंभव होता है – जान-बूझ कर किसी प्राणी की हत्या करना; चोरी करना; मैथुन-धर्म का सेवन करना; जान-बूझ कर झूठ बोलना; गृहस्थकाल के समान जोड़ने-बटोरने वाला होना; राग के वशीभूत होना; द्वेष के वशीभूत होना; मोह के वशीभूत होना; तथा भय के वशीभूत होना।

* इन नौ संज्ञाओं को भावित करने वा बढ़ाने से अमृत की प्राप्ति होती है – अशुभ-संज्ञा, मरण-संज्ञा, भोजन के बारे में प्रतिकूल संज्ञा, सभी लोकों के

बारे में अनभिरति-संज्ञा, अनित्य-संज्ञा, अनित्य के प्रति दुःख-संज्ञा, दुःख के प्रति अनात्म-संज्ञा, प्रहाण-संज्ञा तथा विराग-संज्ञा।

* जिस कुल में ये नौ बातें हों, वहां नहीं जाना चाहिए और जाना हो जाय तो वहां बैठना नहीं चाहिए – अच्छी तरह उठ कर स्वागत न करते हों; अच्छी तरह अभिवादन न करते हों, आदरपूर्वक आसन न देते हों; घर में होती हुई वस्तु को भी छिपाते हों; बहुत होने पर भी थोड़ा-सा देते हों; बढ़िया होने पर भी रूखा-सूखा देते हों; सत्कारपूर्वक नहीं, असत्कारपूर्वक देते हों; धर्म की बात सुनने के लिए न बैठते हों; और जो कहा जाय, उसे सुनते न हों।

* ऐसे नौ धर्म हैं जिनके मूल में तृष्णा होती है – तृष्णा के होने से खोज; खोज के होने से प्राप्ति; प्राप्ति के होने से विनिश्चय; विनिश्चय के होने से आसक्ति; आसक्ति के होने से ममत्व; ममत्व के होने से परिग्रह; परिग्रह के होने से मात्सर्य; मात्सर्य के होने से आरक्षण; और आरक्षण को लेकर दंडादंडी, शस्त्र-प्रयोग, कलह, विग्रह, विवाद, तू-तू-मैं-मैं, चुगलखोरी, झूठ बोलना और दूसरे भी अनेक पापपूर्ण, अकुशल धर्म।

* क्रमशः होने वाले नौ निरोध हैं – प्रथमध्यान-प्राप्त व्यक्ति की कामसंज्ञा का निरोध; द्वितीयध्यान-प्राप्त व्यक्ति के वितर्कों और विचारों का निरोध; तृतीयध्यान-प्राप्त व्यक्ति की प्रीति का निरोध; चतुर्थध्यान-प्राप्त व्यक्ति के आश्वास-प्रश्वास का निरोध; आकाशानंत्यायतन-प्राप्त व्यक्ति की रूपसंज्ञा का निरोध; विज्ञानानंत्यायतन-प्राप्त व्यक्ति की आकाशानंत्यायतन-संज्ञा का निरोध; आकिंचन्यायतन-प्राप्त व्यक्ति की विज्ञानानंत्यायतन-संज्ञा का निरोध; नैवसंज्ञानासंज्ञा-प्राप्त व्यक्ति की आकिंचन्यायतन-संज्ञा का निरोध; और संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्था को प्राप्त हुए व्यक्ति की संज्ञा तथा वेदना का निरोध।

* क्रमशः होने वाले नौ विहार हैं – प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान, आकाशानंत्यायतन, विज्ञानानंत्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन तथा संज्ञावेदयितनिरोध। ये सभी आस्रवों के क्षय का कारण बनते हैं। (भगवान ने विस्तार से इसका निदान भी प्रस्तुत किया।)

* इन नौ धर्मों को छोड़े बिना अरहत्व का साक्षात्कार नहीं हो सकता – राग, द्वेष, मोह, क्रोध, वैर, दूसरे का अवमूल्यन, तिरस्कार, ईर्ष्या तथा मात्सर्य। पर इन्हें छोड़ देने से साक्षात्कार होने की संभावना हो जाती है।

इस निपात में निम्नांकित विषयों के बारे में भी चर्चा हुई है

समय-समय पर धर्म-श्रवण करने, धर्म के विषय में बातचीत करने के शुभ परिणाम।

संसार में नौ प्रकार के लोगों की विद्यमानता।

प्राणियों के नौ प्रकार के आवास।

चित्त में रोष उत्पन्न होने के नौ कारण और इसे दूर करने के भी नौ उपाय।

निर्वाण 'सुख' क्योंकर है?

भगवान ने 'सम्यक संबुद्ध' होने का दावा कब किया?

भिन्न-भिन्न प्रकार की बाधाएं और उनका निवारण।

शिक्षा-संबंधी दुर्बलताएं, नीवरण, कामगुण आदि, और इनके प्रहाण का उपाय।

इस निपात में निम्नांकित पदों की व्याख्या भी मिलती है

कायसाक्षी, प्रज्ञाविमुक्त, उभयतोभागविमुक्त, सांदृष्टिक धर्म, निर्वाण, परिनिर्वाण, तदंगनिर्वाण, दृष्टधर्मनिर्वाण, क्षेम, क्षेमप्राप्त, अमृत, अमृतप्राप्त, अभय, अभयप्राप्त, प्रश्रब्धि, निरोध, इत्यादि।

दसवां निपात

इस निपात में मुख्यतया दस-दस धर्मों को लेकर दिये गये उपदेशों का संग्रह है, जो बाईस वर्गों तथा एक रागपेय्याल में विभाजित है।

इसमें प्रतिपादित विषय-वस्तु के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार से हैं

* इन दस धर्मों से युक्त भिक्षु सभी को प्रसन्न करने वाला और सर्व प्रकार से परिपूर्ण होता है – श्रद्धा, शील, बहुश्रुतता, धर्मकथिकता, परिषदगोचरता, परिषद को धर्मदेशना देने में निपुणता, विनयधरता, आरण्यकता, चारों ध्यानों की स्वेच्छा एवं सुगमता से प्राप्ति, और आस्रवों का क्षय हो जाने से आस्रवरहित चित्त की विमुक्ति एवं प्रज्ञा से विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरना।

* ये दस संयोजन हैं – सत्कायदृष्टि, विचिकित्सा, शील-व्रतों से अत्यधिक चिपकाव, कामछंद, व्यापाद, रूपराग, अरूपराग, मान, उद्धतपन और अविद्या। इनमें से पहले पांच नीचे के संयोजन कहलाते हैं और पिछले पांच ऊपर के संयोजन।

* ये दस व्यक्ति भेंट देने योग्य, अतिथि बनाने योग्य, दक्षिणा देने योग्य, हाथ जोड़कर स्वागत करने योग्य और लोगों के लिए अनुपम पुण्यक्षेत्र होते हैं – सम्यक संबुद्ध, प्रत्येक बुद्ध, दोनों ओर से विमुक्त, प्रज्ञाविमुक्त, कायसाक्षी, दृष्टिप्राप्त, श्रद्धाविमुक्त, श्रद्धानुसारी, धर्मानुसारी तथा गोत्रभू (आर्यजन)।

* ये दस तथागत के तथागत-बल होते हैं, जिनसे युक्त होकर वे अपने श्रेष्ठत्व की घोषणा करते, परिषदों में सिंहनाद करते और धर्मचक्र का प्रवर्तन करते हैं – उचित को उचित और अनुचित को अनुचित यथार्थतः जानना; तीनों कालों के कर्मों का फल, सकारण, यथार्थतः जानना; सर्वत्रगामी प्रतिपदा को यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जानना; नानाधातुक लोक को यथार्थतः जानना; प्राणियों की नाना प्रकार की प्रवृत्ति को यथार्थतः जानना; अन्य व्यक्तियों की श्रद्धा आदि इंद्रियों की कमी-बेशी को यथार्थतः जानना; ध्यानों, विमोक्षों, समाधियों के बाधक धर्मों, इनकी परिशुद्धि और उनसे उठने को यथार्थतः जानना; अनेक प्रकार के पूर्व-जन्मों का अनुस्मरण; विशुद्ध दिव्य चक्षु से प्राणियों को अपने-अपने कर्मों की गति के अनुसार मरते-जन्मते देखना; और आस्रवों का क्षय कर आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति, प्रज्ञा से विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरना।

* ये शरीर के दस धर्म हैं – सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, मल, मूत्र, शरीर का संयम, वाणी का संयम, आजीविका-संबंधी संयम, तथा पुनर्भव का हेतु भव-संस्कार।

* दस संज्ञाएं जिनके कारण आयुष्मान गिरिमानन्द का रोग जाता रहा – अनित्य-संज्ञा, अनात्म-संज्ञा, अशुभ-संज्ञा, आदीनव-संज्ञा, प्रहाण-संज्ञा, विराग-संज्ञा, निरोध-संज्ञा, सब लोकों के प्रति अनभिरति संज्ञा, सभी संस्कारों के प्रति अनिच्छा-संज्ञा तथा आनापान-स्मृति।

* उचित प्रकार के दस कथा-प्रकरण हैं – अल्पेच्छ-कथा, संतुष्टि-कथा, प्रविवेक-कथा, असंसर्ग-कथा, वीर्यारंभ-कथा, शील-कथा, समाधि-कथा,

प्रज्ञा-कथा, विमुक्ति-कथा तथा विमुक्तिज्ञानदर्शन-कथा। इन्हीं कथा-प्रकरणों को आधार बनाकर बातचीत करना समीचीन रहता है।

* दस कांटे हैं – एकांत-प्रेमी के लिए मंडली में रहना; अशुभ निमित्त की भावना में लगे हुए के लिए शुभ निमित्त में लगना; इंद्रिय-निग्रह करने वाले के लिए खेल-तमाशे देखना; ब्रह्मचारी के लिए स्त्रियों की संगति में रहना; प्रथम ध्यान के लिए शब्द; द्वितीय ध्यान के लिए वितर्क और विचार; तृतीय ध्यान के लिए प्रीति; चतुर्थ ध्यान के लिए आश्वास-प्रश्वास; संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्था के लिए संज्ञा तथा वेदना; और राग, द्वेष तथा मोह। (भगवान ने भिक्षुओं को बिना कांटे के, निष्कंटक होकर विहरने की सीख दी।)

* कौवे के दस दुर्गुण हैं – दुःसाहस, प्रगल्भता, लोलुपता, पेटूपना, लालच, निर्दयता, दुर्बलता, घटिया प्रकार की रुचि, स्मृतिविमूढ़ता और नीचता। पापी भिक्षु भी यही दुर्गुण संजोये रहता है।

* ये दस झड़ जाने वाली वस्तुएं हैं – सम्यक दृष्टि वाले की मिथ्या दृष्टि, सम्यक संकल्प वाले के मिथ्या संकल्प, सम्यक वचन वाले के मिथ्या वचन, सम्यक कर्मांत वाले के मिथ्या कर्मांत, सम्यक आजीविका वाले की मिथ्या आजीविका, सम्यक व्यायाम वाले का मिथ्या व्यायाम, सम्यक स्मृति वाले की मिथ्या स्मृति, सम्यक समाधि वाले की मिथ्या समाधि, सम्यक ज्ञान वाले का मिथ्या ज्ञान और सम्यक विमुक्ति वाले की मिथ्या विमुक्ति। इनके झड़ जाने से इनके कारण होने वाले पाप कर्म भी झड़ जाते हैं।

* संगति करने योग्य व्यक्ति के दस धर्म – प्राणी-हिंसा न करना, चोरी न करना, कामभोग-संबंधी मिथ्याचार न करना, झूठ न बोलना, चुगली न खाना, कठोर वचन न बोलना, व्यर्थ प्रलाप न करना, लोभ न करना, क्रोध न करना और सम्यक दृष्टि वाला होना।

इस निपात में निम्नांकित विषयों की भी चर्चा हुई है

कुशल-कर्म, शील-पालन से आगे-से-आगे क्या लाभ होता है?

किन पांच बातों से मुक्त, और किन पांच बातों से युक्त, कोई भिक्षु 'केवली' कहलाने लगता है?

सभी कुशल कर्मों में 'अप्रमाद' अग्र (श्रेष्ठ) कहलाता है।

किन दस धर्मों के होने से कोई भिक्षु सनाथ' कहलाता है।

दस आर्यवास, जिनमें आर्य (श्रेष्ठ जन) आवास करते थे, करते हैं और किया करेंगे।

दस उद्देश्य, जिनकी पूर्ति के लिए शिक्षापद प्रज्ञप्त किये गये, और प्रातिमोक्ष के नियम बनाये गये।

दस विवादमूल (झगड़े के कारण)।

राजा के रनिवास में जाने के दस दुष्परिणाम।

शुभ अथवा अशुभ कार्यों में लगने के कारण।

इस धर्मविनय में 'सुख' और 'दुःख' क्या है?

दस प्रशंसनीय बातें।

दस प्रकार के कामभोगी।

'आर्य विरेचन' और 'आर्य वमन'।

दो पाटः इस ओर का और उस ओर का।

'आर्य प्रत्यवरोहण'

वे बातें जिनसे कोई व्यक्ति स्वर्ग में डाले समान हो जाता है, अथवा नरक में डाले समान; इत्यादि।

भगवान ने निम्नांकित के बारे में भी देशना की है – साधु-असाधु; कुशल-अकुशल;अर्थ-अनर्थ; धर्म-अधर्म; आर्य धर्म और अनार्य धर्म; सास्रव धर्म और अनास्रव धर्म; सदोष धर्म और निर्दोष धर्म; इत्यादि।

और इसी प्रकार

आर्य मार्ग और अनार्य मार्ग; कृष्ण मार्ग और शुक्ल मार्ग; असद्धर्म और सद्धर्म; अपनाने योग्य धर्म और न अपनाने योग्य धर्म; साक्षात करने योग्य धर्म और साक्षात न करने योग्य धर्म; इत्यादि।

ग्यारहवां निपात

इस निपात में मुख्यतया ग्यारह-ग्यारह धर्मों को लेकर दिये गये उपदेशों का संग्रह है, जो तीन वर्गों तथा एक रागपेय्याल में विभाजित है।

इसमें प्रतिपादित विषय-वस्तु के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार से हैं

* अपने सब्रह्मचारियों के प्रति आक्रोश करने वाले, उनकी खिल्ली उड़ाने वाले के बारे में यह संभावना रहती है कि उस पर इन ग्यारह विपत्तियों में से कोई भी विपत्ति आ पड़े : अ-प्राप्त को प्राप्त न कर पाये; प्राप्त हुआ नष्ट हो जाय; सद्धर्म स्पष्ट न हो; सद्धर्म के बारे में अहंकारी हो जाय; बेमन से ब्रह्मचर्य का पालन करने लगे; किसी गंभीर दोष का दोषी हो जाय; शिक्षा को छोड़ हीन-मार्ग (गृहस्थ) अपना ले; किसी बड़े रोग से आतंकित हो उठे; पागल हो जाय; बेहोशी की अवस्था में मरे; शरीर छोड़ने पर दुर्गति को प्राप्त हो।

* किसी भिक्षु के लिए ऐसी समाधि प्राप्त कर पाना संभव है, जबकि 'होश' होते हुए भी उसे इन ग्यारह के बारे में 'होश' न रहे –पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाशानंत्यायतन, विज्ञानानंत्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन, इहलोक, परलोक, तथा दृष्ट-श्रुत – नासिका-जिह्वा स्पर्शेन्द्रिय द्वारा अनुभूत-विज्ञात-प्राप्त-पर्येषित-मन से विचारित।

* जिस भिक्षु में ये तीन बातें होती हैं, वह होता है अत्यंत योगक्षेमी, देवताओं तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ। कौनसी तीन बातें? अशैक्ष शीलस्कंध से युक्त होना, अशैक्ष समाधिस्कंध से युक्त होना, और अशैक्ष प्रज्ञास्कंध से युक्त होना।

* जिस भिक्षु में ये दूसरी तीन बातें होती हैं, वह भी होता है अत्यंत योगक्षेमी, देवताओं तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ। कौन सी दूसरी तीन बातें? ऋद्धि-प्रातिहार्य, आदेशना-प्रातिहार्य, तथा अनुशासन-प्रातिहार्य।

* जिस भिक्षु में ये तीसरी तीन बातें होती हैं, वह भी होता है अत्यंत योगक्षेमी, देवताओं तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ। कौन सी तीसरी तीन बातें? सम्यक दृष्टि, सम्यक ज्ञान, तथा सम्यक विमुक्ति।

* जिस भिक्षु में ये दो बातें होती हैं, वह भी होता है अत्यंत योगक्षेमी, देवताओं तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ। कौन सी दो बातें? विद्या तथा आचरण। (सनङ्कुमार ब्रह्मा ने भी कहा था कि जो विद्या और आचरण से युक्त होता है, वह देवों तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है।)

* मैत्री-स्वरूप चित्त की विमुक्ति को भावित करने, बढ़ाने से ग्यारह शुभ परिणामों की आशा की जा सकती है –सुखपूर्वक सोना; सुखपूर्वक उठना; बुरे स्वप्न न देखना; मनुष्यों का प्रिय होना; अ-मनुष्यों का प्रिय होना; देवताओं द्वारा रक्षित होना; अग्नि, विष, शस्त्र का असर न होना; चित्त का शीघ्र ही

एकाग्र हो जाना; मुख-वर्ण प्रसन्न रहना; होश-हवास सहित मृत्यु को प्राप्त होना; और परे नहीं, तो ब्रह्म-लोक की प्राप्ति।

इस निपात में निम्नांकित विषयों की भी चर्चा हुई है

– श्रद्धावान के ग्यारह लक्षण।

– राग, द्वेष, मोह आदि की अभिज्ञा, परिज्ञा, परिक्षय, प्रहाण, क्षय, व्यय, विराग, निरोध, त्याग एवं प्रतिनिसर्ग(परित्याग) के लिए भावित किए जाने योग्य ग्यारह धर्म।

इस निपात में ग्वाले का दृष्टांत प्रस्तुत करते हुए यह भी समझाया गया है कि किन ग्यारह बातों के कारण कोई भिक्षु इस धर्मविनय में वृद्धि, उन्नति, विपुलता को प्राप्त हो सकता है, और किन ग्यारह बातों के कारण इसमें असमर्थ रहता है।

खुद्दक निकाय

खुद्दक पाठ

परंपरागत मान्यता के अनुसार 'खुद्दक पाठ' खुद्दक निकाय का प्रथम ग्रंथ है । इसका आकार बहुत ही छोटा है। इसमें मात्र नौ विषयों का प्रतिपादन हुआ है।

* 'सरणत्तय' के अंतर्गत बुद्ध, धम्म तथा सङ्घ की शरण ग्रहण करने का उल्लेख है।

* 'दससिक्खापद' के अंतर्गत दस शीलों को अपनाने का संकल्प उपलब्ध है।

* 'द्वत्तिंसाकार' के अंतर्गत शरीरगत बत्तीस प्रकार की गंदगियां गिनायी गयी हैं।

* 'कुमारपञ्हा' के अंतर्गत [सोपाक-नामक] कुमार को पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में उसने बतलाया है कि १ से लेकर १० तक के अंकों का क्या आशय होता है। उदाहरणतया, '२' से अभिप्राय नाम तथा रूप से, '३' से अभिप्राय तीन प्रकार की वेदनाओं से,'४' से अभिप्राय चार आर्य-सत्यों से है ।

* 'मङ्गलसुत्त' के अंतर्गत अड़तीस प्रकार के मंगल-धर्म प्रकाशित किये गये हैं। प्रारंभिक मंगल-धर्म है – 'मूर्खों की संगति न करना' और अंतिम है 'लोक धर्मों (लाभ-अलाभ, यश-अपयश, प्रशंसा-निंदा, तथा सुख-दुःख) से अविचलित रह निःशोक, निर्मल तथा निर्भय बना रहना'। ये सभी मंगल-धर्म देवताओं तथा मनुष्यों का उत्तरोत्तर कल्याण करने वाले हैं।

* 'रतनसुत्त' में प्रज्ञप्त किया गया है कि बुद्ध, धम्म तथा सङ्घ में क्या-क्या उत्तम रत्न हैं, जैसे

लोक-परलोक में जो भी धन हैं अथवा स्वर्गों में जो भी उत्तम रत्न हैं, उनमें से कोई भी बुद्ध के समान श्रेष्ठ नहीं है, यह बुद्ध में उत्तम रत्न है ।

जिस उत्तम, अमृत, विराग-पद और सभी दोषों के क्षयकारक निर्वाण को शाक्यमुनि ने प्राप्त किया उस धम्म के समान कोई श्रेष्ठ नहीं है, यह धम्म में उत्तम रत्न है।

जैसे धरती में गहरी गड़ी हुई इंद्रकील [नगर-स्तंभ] चारों ओर की तेज हवाओं से भी प्रकंपित नहीं होती, वैसे ही चार आर्य-सत्यों का भली प्रकार साक्षात्कार करने वाला सत्पुरुष अविचल रहता है, यह सङ्घ में उत्तम रत्न है।

बुद्ध, धम्म तथा सङ्घ में जो-जो उत्तम रत्न हैं, उनकी सत्यता प्रज्ञप्त करते समय सबके लिए स्वस्ति-मंगल की कामना भी की गयी है।

* 'तिरोकुट्टसुत्त' में प्रेत-प्राणियों की दयनीय दशा का चित्रण किया गया है और उनके लिए दान-दक्षिणा देने का महत्त्व बतलाया गया है। संबंधियों का रोना-धोना उनके काम नहीं आता, परंतु उनके निमित्त दिया गया दान तत्काल भी, और भविष्य में भी, उनके हित के लिए होता है। इस लोक में दिया गया दान उन्हें ऐसे ही प्राप्त हो जाता है जैसे ऊंचे स्थान पर बरसा हुआ पानी निचले स्थान पर जा पहुँचता है, अथवा पानी से लदे हुए बादलों से सागर लबालब भर जाता है।

* 'निधिकण्डसुत्त' में भौतिक निधि की नश्वरता पर प्रकाश डालने के उपरांत पुण्य-रूपी निधि का माहात्म्य सामने लाया गया है। इस निधि को कोई चुरा नहीं सकता और इससे देवों तथा मनुष्यों की सारी कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं – सुंदर वर्ण पाने से लेकर संबोधि प्राप्त कर लेने तक।

* 'मेत्तसुत्त' में सभी प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव बनाये रखने का उपदेश है। हर समय और हर स्थिति में यही भाव बना रहे, तो यही 'ब्रह्मविहार' कहलाता है। ऐसा व्यक्ति किसी मिथ्यादृष्टि में न पड़, शीलवान बना रह कर, विशुद्ध दर्शन से युक्त हो, काम-तृष्णा का नाश कर, पुनर्जन्म से छुटकारा पा लेता है।

☸

धम्मपद

'धम्मपद' का बुद्धवचन में विशेष स्थान है। भारत के अनेक पड़ोसी देशों में यह ग्रंथ अत्यंत लोकप्रिय है। इसमें सुभाषित ही सुभाषित भरे पड़े हैं, जो विपश्यी साधकों के लिए अनमोल निधि के समान हैं।

इसमें चार सौ तेईस गाथाएं हैं, जो छब्बीस वर्गों में विभाजित हैं। प्रत्येक वर्ग में से किन्हीं-किन्हीं पदों की भावाभिव्यक्ति नीचे की गयी है

[१] यमक-वग्ग : –सारे धर्म पहले मन में ही उत्पन्न होते हैं, अतः मन ही श्रेष्ठ है। यदि कोई व्यक्ति दूषित मन से कोई वचन बोलता अथवा काम करता है, तो दुःख उसके पीछे ऐसे लग जाता है जैसे गाड़ी खींचने वाले बैलों के पैरों के पीछे गाड़ी का चक्का। यदि कोई निर्मल मन से वचन बोलता अथवा काम करता है, तो सुख उसके पीछे ऐसे लग जाता है जैसे कभी संग न छोड़ने वाली छाया।

[२] अप्पमाद-वग्ग : –जब कोई समझदार व्यक्ति प्रमाद को अप्रमाद से जीत लेता है, तब वह प्रज्ञारूपी प्रासाद पर चढ़ कर शोकरहित हो जाता है। ऐसा शोकरहित धीर व्यक्ति शोकग्रस्त विमूढ़ जनों को ऐसे ही [करुणाभाव से] देखता है, जैसे कि पर्वत पर खड़ा हुआ व्यक्ति जमीन पर खड़े हुए लोगों को देखता है।

[३] चित्त-वग्ग : –जितनी हानि शत्रु शत्रु की अथवा वैरी वैरी की करता है, उससे कहीं अधिक हानि गलत मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है। जितनी भलाई माता-पिता या दूसरे भाई-बंधु नहीं कर पाते हैं, उससे कहीं अधिक भलाई सही मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।

[४] पुप्फ-वग्ग : –जैसे किसी बड़ी सड़क के किनारे फेंके गये कूड़े-कचरे के ढेर पर कोई पवित्र गंध वाला सुंदर पद्म उत्पन्न हो जाय, ऐसे ही कूड़े-कचरे के समान अंधे पृथग्जनों में सम्यकसंबुद्ध का श्रावक अपनी प्रज्ञा से अत्यधिक शोभित होता है।

[५] बाल-वग्ग : –जागते हुए के लिए रात लंबी होती है। थके हुए के लिए योजन लंबा होता है। सद्धर्म को न जानने वाले मूढ़ों के लिए संसार-चक्र लंबा होता है।

[६] पण्डित-वग्ग : –जैसे सघन शैल-पर्वत पवन से प्रकंपित नहीं होता, वैसे ही समझदार लोग निंदा और प्रशंसा से विचलित नहीं होते।

[७] अरहन्त-वग्ग : –जिसके आस्रव पूरी तरह से क्षीण हो गये हैं, जिसकी आहार में आसक्ति नहीं है, और शून्य तथा अनिमित्त विमोक्ष (निर्वाण) जिसकी गोचरभूमि है, उसकी गति, आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की गति के समान, अनजानी रहती है।

[८] सहस्स-वग्ग : –जो संग्राम में हजारों मनुष्यों को जीत ले, उससे उत्तम संग्राम-विजयी वही होता है जो एक अपने आप को जीत लेता है।

[९] पाप-वग्ग : –जब तक पाप का फल नहीं मिलता है, तब तक पापी भी पाप को अच्छा ही समझता है। किंतु जब पाप का फल मिलता है, तब उसे पाप दिखाई देने लगते हैं।

[१०] दण्ड-वग्ग : –जैसे ग्वाला लाठी से गायों को चारागाह में हांक ले जाता है, वैसे ही बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियों की आयु को हर ले जाते हैं।

[११] जरा-वग्ग : –राजा के सुचित्रित रथ पुराने पड़ जाते हैं और यह शरीर भी, किंतु संतों का धर्म पुराना नहीं पड़ता है। संत लोग सत्पुरुषों से ऐसा ही कहते आए हैं।

[१२] अत्त-वग्ग : –अपना किया हुआ पापकर्म अपने को मैला कर देता है, न किया हुआ पापकर्म शुद्ध रखता है। शुद्धि-अशुद्धि हर एक की अपनी-अपनी होती है। कोई व्यक्ति किसी दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता।

[१३] लोक-वग्ग : –जो कोई इस लोक को बुलबुले की तरह और मरीचिका के समान देखता है, उसे यमराज नहीं देख पाता है।

[१४] बुद्ध-वग्ग : –सभी पाप-कर्मों से बचना, कुशल-कर्म करना, अपने चित्त को नितांत निर्मल करते रहना – यह बुद्धों की शिक्षा है।

[१५] सुख-वग्ग : –तृष्णा सब से बड़ा रोग है और (उसके कारण) जो संस्कार बनते हैं वे सबसे बड़े दुःख हैं। इसे (विपश्यना-साधना द्वारा) यथार्थतः जान कर जो निर्वाण (प्राप्त होता है), वह सबसे बड़ा सुख है।

[१६] पिय-वग्ग : –शीलसंपन्न, विपश्यना-संपन्न, धर्म-निष्ठ, सत्यवादी तथा कर्तव्यपरायण को लोग प्यार करते हैं।

[१७] कोध-वग्ग: –जो (सिर पर) चढ़े हुए क्रोधको भ्रांत हुए रथ के समान थाम लेता है, उसी को मैं सारथी कहता हूं; दूसरे तो केवल लगाम पकड़ने वाले होते हैं।

[१८] मल-वग्ग : –समझदार व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने मैल को क्रमशः थोड़ा-थोड़ा क्षण-प्रतिक्षण वैसे ही दूर करे, जैसे कि रजतकार (सुनार) चांदी के मैल को दूर करता है।

[१९] धम्मट्ठ-वग्ग : –जब तक धर्म की चर्चा ही चर्चा करता है, तब तक धर्मधारी नहीं है। परंतु जब धर्म (के गूढ़ रहस्य) को थोड़ा-भी सुनता है और (सुन समझकर इसे विपश्यना-साधना द्वारा) अपनी काया में स्वयं देखता है, तभी (सही माने में) धर्मधारी होता है। ऐसा व्यक्ति (सत्य-)धर्म दर्शन में प्रमाद नहीं करता।

[२०] मग्ग-वग्ग : –तथागत केवल (विशुद्धि का) मार्ग आख्यात करते हैं। परिश्रम तो तुम्हें ही करना होता है। जो उस मार्ग पर आरूढ़ हो जाते हैं, वे ध्यान-रत होकर मृत्यु के बंधन से मुक्त हो जाते हैं।

विशुद्धि का मार्ग है

* 'सभी संस्कार अनित्य हैं, इसे प्रज्ञापूर्वक जानना;
* 'सभी संस्कार दुःख हैं, इसे प्रज्ञापूर्वक जानना;
* 'सभी धर्म अनात्म हैं', इसे प्रज्ञापूर्वक जानना।

इन्हें इस प्रकार जान लेने से दुःख का निर्वेदन हो जाता है।

[२१] पकिण्णक-वग्ग: – जिनकी कायगता-स्मृति (काया में होने वाली वेदनाओं के प्रति जागरूकता) निरंतर उपस्थित रहती है, वे अकरणीय कार्य नहीं करते, सदा करणीय ही करते हैं। ऐसे स्मृतिमान एवं संप्रज्ञानी लोगों के आस्रव समाप्त हो जाते हैं।

[२२] निरय-वग्ग : –दुःशील और संयम-विहीन जीवन जीते हुए राष्ट्रपिंड (समाज का अन्न) खाने से तो आग की लपट के समान लाल हुए तप्त लोहे के गोले को खाना कहीं अच्छा है।

[२३] नाग-वग्ग : –जैसे युद्ध में हाथी धनुष से निकले बाण को सहन करता है, वैसे ही मैं अपशब्द सहन करूंगा, क्योंकि दुःशील लोग ही अधिक हैं।

[२४] तण्हा-वग्ग : –धर्म का दान सारे दानों से बढ़-चढ़ कर होता है, धर्म का रस सारे रसों से प्रबल होता है, धर्म में रति सब रतियों से उत्कृष्ट होती है, तृष्णा का क्षय सारे दुःखों को अभिभूत किये रहता है।

[२५] भिक्खु-वग्ग : –जब किसी शून्यागार में प्रवेश करके कोई शांत-चित्त भिक्षु सम्यक रूप से धर्मानुपश्यना करता है, तब उसे लोकोत्तर सुख प्राप्त होता है जो कि सामान्य मानवीय लोकीय सुखों से परे होता है।

वह जब-जब (शरीर और चित्त) स्कंधों की उदय-व्यय (-रूपी अनित्यता) की विपश्यनानुभूति करता है, तब-तब प्रीति-प्रमोद (-रूपी आध्यात्म-सुख) की उपलब्धि करता हुआ अमृत पद (निर्वाण) का साक्षात्कार कर लेता है।

[२६] ब्राह्मण-वग्ग : –अपने पापों को धोकर बहा देने वाला कहलाता है 'ब्राह्मण', समता का आचरण करने वाला 'श्रमण', और अपने चित्त-मलों को दूर कर देने वाला 'प्रव्रजित'।

'ब्राह्मण' होता है ऋषभ (उत्तम), प्रवर (श्रेष्ठ), वीर, महर्षि, विजेता, अकंप्य, स्नातक ,**बुद्ध** !

☸

उदान

किन्हीं घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में भगवान बुद्ध के मुख से निःसृत प्रीति-वाक्यों, उल्लास-वचनों अथवा हर्षोद्गारों का संग्रह इस ग्रंथ में मिलता है।

इसमें अस्सी सुत्त हैं, जो आठ वर्गों में विभाजित हैं।

कुछेक उदानों का परिचयात्मक विवरण नीचे दिया गया है

* संबोधि प्राप्त करने के पश्चात समाधि से उठ कर भगवान बुद्ध ने रात्रि के पहले, बिचले तथा पिछले यामों में तीन विधियों से प्रतीत्यसमुत्पाद का, भली प्रकार से मनन किया:

अनुलोमतः – इसके होने से यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न हो जाता है।

प्रतिलोमतः – इसके नहीं होने से यह नहीं होता है, इसके रुक जाने से यह रुक जाता है।

अनुलोमतः प्रतिलोमतः – इसके होने से यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न हो जाता है। इसके नहीं होने से यह नहीं होता है, इसके रुक जाने से यह रुक जाता है।

* उस समय उनके मुख से उदान के ये वचन निकले

"जब क्षीणास्रव तपस्वी, योगी के समक्ष धर्म प्रकट हो जाते हैं, तब उसकी सारी शंकाएं मिट जाती हैं; क्योंकि वह हेतु-सहित धर्म को प्रज्ञापूर्वक जान लेता है, प्रत्ययों के क्षय को जान लेता है और मार की सेना को वैसे ही छिन्न-भिन्न कर डालता है जैसे (अंधकार को विदीर्ण कर) आकाश में चमकने वाला सूर्य।"

* किसी सांप को लाठी से पीटते बालकों को देख कर भगवान के मुख से निःसृत उदान-वचन

"जो अपना सुख चाहने वाला सुख चाहने वाले (अन्य) प्राणियों को लाठी से मारता है, वह मरने पर सुख का लाभी नहीं होता। जो अपना सुख चाहने वाला सुख चाहने वाले (अन्य) प्राणियों को लाठी से नहीं मारता, वह मरने पर सुख का लाभी होता है।"

* अपने प्रिय इकलौते पुत्र के निधन पर शोक-विह्वल उपासक को देख कर निकले उदान-वचन

“जो देवता अथवा मनुष्य प्रिय रूपों का आस्वाद लेने में लगे रहते हैं, वे पाप और विनाश को प्राप्त हो मृत्युराज के वश में चले जाते हैं। परंतु जो दिन-रात अप्रमत्त रह कर प्रिय रूप को छोड़ देते हैं, वे पाप के मूल को खन डालते हैं, मुत्यु-पाश में नहीं फँसते हैं।”

* अपने पास ही जंगल में कुटी बना कर रहने वाले उद्धत, अभिमानी, चपल, वाचाल, मूढ़-स्मृति, संप्रज्ञान-रहित, असमाहित, भ्रांत-चित्त एवं इंद्रियों में असंयमी भिक्षुओं को देख कर भगवान के मुख से निकले उदान-वचन

“संयमविहीन, मिथ्यादृष्टिक और आलसी मार के वश में चला जाता है । संयमी, सम्यक संकल्प वाला, सम्यक दृष्टिक, (संस्कारों के) उदय-व्यय को जानने वाला, निरालस भिक्षु सारी दुर्गतियों को लात मारता है।”

* आयुष्मान आनन्द द्वारा यह कहे जाने पर कि बोधिसत्व की माताएं बोधिसत्व के जन्म लेने के एक सप्ताह पश्चात, अर्थात अल्पायु में ही, देह त्याग तुसित देवलोक में जा उत्पन्न होती हैं, भगवान के उदान-वचन

“जो कोई हुए हैं, या होंगे, सभी शरीर छोड़ कर चले जायेंगे। अतः समझदार व्यक्ति सब वस्तुओं के क्षय को जान कर डट कर ब्रह्मचर्य का पालन करे।”

* देवदत्त द्वारा संघ-भेद करने का समाचार मिलने पर उदानित उदानयित-वचन

“साधु साधुपना करे, यह आसान है। साधु पाप करे, यह कठिन है। पापी पाप करे, यह आसान है। आर्यजन का पाप करना कठिन होता है।”

* मिथ्या सिद्धांतों को लेकर आपस में झगड़ा करने वाले परिव्राजकों का प्रसंग ध्यान में लाये जाने पर उदानयित उदान-वचन

“कितने ही श्रमण वा ब्राह्मण इसी में जूझे रहते हैं। वे बिना अज्ञान का नाश किये बीच में ही नष्ट हो जाते हैं।”

* मल्लपुत्र आयुष्मान दब्ब द्वारा अग्निधातु का आश्रय लेकर परिनिर्वाण-लाभ करने पर भगवान का हर्षोद्गार

“काया का भेदन हुआ, संज्ञा निरुद्ध हुई, सारी वेदनाएं ठंडी पड़ गईं, संस्कारों का उपशमन हुआ, विज्ञान अस्त हुआ!”

इस ग्रंथ में ऐसे भी अनेक प्रसंग हैं जिनमें भगवान के श्रावक उनके समीप ही पालथी मार कर, शरीर को सीधा रख, स्मृतिमान बने रह कर साधनाभ्यास करते थे। उनकी भाव-भंगिमा एवं उपलब्धियों को जान कर भगवान के मुख से अनेक बार उल्लास-वचन प्रसृत हुए। विपश्यी साधकों के लिए ये वचन अत्यंत प्रेरणाजनक हैं।

उदाहरणतया

* किसी भिक्षुविशेष के संदर्भ में

“जिस भिक्षु ने अपने सारे (नये) कर्म करने छोड़ दिये हों और पुराने कर्मों के मैल को धुन-धुन कर दूर कर रहा हो, वह ऐसे धरातल पर खड़ा होता है जहां ‘मेरा’ कहने के लिए कुछ नहीं रह जाता। ऐसे व्यक्ति के पास ‘लप-लप’ करने के लिए कुछ नहीं बचता।”

* आयुष्मान सारिपुत्त के संदर्भ में

“(संस्कारों के) उपशमन से शांत-चित्त हुये, भव-रज्जु विच्छिन्न किये भिक्षु का जन्म लेने का सिलसिला विच्छिन्न हो जाता है। वह मार के बंधन से मुक्त हो जाता है।”

* आयुष्मान महामोग्गल्लान के संदर्भ में

“कायगता स्मृति उपस्थित हो, छहों स्पर्शायतन संवृत हों, भिक्षु सतत समाहित हो, तो वह अपने निर्वाण को जान ही लेता है।”

* आयुष्मान पिण्डोलभारद्वाज के संदर्भ में

“वाणी और शरीर से किसी को कष्ट न पहुँचाना, प्रातिमोक्ष के नियमों का पालन करना, भोजन की मात्रा जानना, एकांत में निवास करना और चित्त [को सुधारने के बारे में] प्रयत्नशील होना – यह बुद्धों की शिक्षा है।”

* आयुष्मान कङ्खारेवत के संदर्भ में

“लोक या परलोक में, अपनी या परायी जितनी भी कांक्षाएं हों, ध्यानी उन सब को छोड़ देते हैं और प्रयत्नपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं।”

* आयुष्मान चूळपन्थक के संदर्भ में

“स्थिर शरीर और स्थिर चित्त से खड़े, बैठे या सोये रह कर जो भिक्षु अपनी स्मृति (जागरूकता) बनाये रखता है, वह ऊंची से ऊंची अवस्थाओं को प्राप्त कर लेता है। ऊंची से ऊंची अवस्थाओं को प्राप्त कर वह मृत्युराज की दृष्टि में नहीं आता।”

* आयुष्मान अञ्ञासिकोण्डञ्ञ के संदर्भ में

“जिसके मूल में पृथ्वी (अर्थात, अविद्या को पनपाने वाले आस्रव, नीवरण आदि) नहीं हैं, और जिसमें पत्ते (अर्थात, मद, प्रमाद, माया, ठगी, आदि) नहीं हैं, उसमें भला (मान-रूपी) वल्लरी कहां से हो सकती है? (संस्कार-रूपी क्लेशों के) बंधन से मुक्त हुए ऐसे धीर पुरुष की कौन निंदा कर सकता है? उसकी तो देवता भी सराहना करते हैं और वह ब्रह्मा से भी प्रशंसित होता है।”

☸

इतिवुत्तक

'इतिवुत्तक' शब्द का अर्थ है –ऐसा कहा गया। इस ग्रंथ का यह नाम देने का संभवतः यह कारण है कि इसके प्रत्येक सुत्त का आरंभ इन शब्दों से होता है – 'वुत्तं हेतं भगवता' [अर्थात, 'भगवान द्वारा यह कहा गया', इत्यादि]।

इस ग्रंथ में एक सौ बारह सुत्त हैं, जो चार निपातों में विभक्त हैं।

प्रत्येक निपात में प्रतिपादित विषय-वस्तु की संक्षिप्त रूपरेखा निम्न प्रकार से है :-

पहला निपात

इसके सुत्तों में एक-एक बात को लेकर भगवान के उपदेश संगृहीत हैं। जैसे

'भिक्षुओ! एक बात छोड़ दो, मैं तुम्हारे अनागामी होने का जामिन बनता हूं। कौन सी एक बात? लोभ'।

'जिस लोभ से लुब्ध होकर प्राणी दुर्गति को प्राप्त होते हैं, उस लोभ को विपश्यना करनेवाले सम्यक प्रकार से जान कर छोड़ देते हैं और इसे छोड़ देने के बाद कभी इस संसार में लौट कर नहीं आते हैं'।

भगवान ने द्वेष, मोह, क्रोध, म्रक्ष एवं मान के संदर्भ में भी इसी प्रकार के वचन कहे हैं।

इस निपात में विवेचन किये गये कुछ अन्य एक-एक विषय हैं

अविद्या, तृष्णा, यथार्थ चिंतन, कल्याणमित्रता, संघ की फूट, संघ की एकता, दूषित चित्त, प्रसन्न चित्त, जान-बूझ कर झूठ बोलना, मैत्री चेतोविमुक्ति ।

दूसरा निपात

इसके सुत्तों में दो-दो बातों को लेकर दिये गये उपदेश संगृहीत हैं। जैसे

'भिक्षुओ! पर्याय से सम्यक संबुद्ध के उपदेश दो प्रकार के होते हैं। कौन से दो प्रकार? पहला –पाप को बुराई के तौर पर देखो। दूसरा –पाप को बुराई के तौर पर देख कर उससे निर्विण्ण, विरक्त, विमुक्त हो जाओ ।'

‘इस प्रकार विरक्त-चित्त होकर तुम दुःख का अंत कर लोगे।

इस निपात में विवेचन किये गये कुछ अन्य दो-दो विषय हैं

इंद्रियों पर संयम न रखना तथा भोजन की मात्रा न जानना। इंद्रियों पर संयम रखना तथा भोजन की मात्रा जानना। ‘मैंने भला काम नहीं किया’ तथा ‘मैंने बुरा काम किया’। ‘मैंने भला काम किया’ तथा ‘मैंने बुरा काम नहीं किया’। बुरा शील एवं बुरी दृष्टि। भला शील एवं भली दृष्टि । सोपाधिशेष निर्वाणधातु तथा अनुपाधिशेष निर्वाणधातु।

तीसरा निपात

इसके सुत्तों में तीन-तीन बातों को लेकर दिये गये उपदेश संगृहीत हैं। जैसे

‘भिक्षुओ! ये तीन वेदनाएं हैं। कौन सी तीन? सुखद, दुःखद तथा अदुःखद-असुखद।’

‘समाहित हुआ, संप्रज्ञानी तथा स्मृतिमान बुद्ध का श्रावक वेदनाओं को जानता है, इनकी उत्पत्ति को जानता है और इनका क्षय कराने वाले मार्ग को, जहां ये निरुद्ध हो जाती हैं, जानता है। वेदनाओं का क्षय हो जाने से भिक्षु तृष्णारहित होकर परिनिर्वाण पा लेता है।’

इस निपात में विवेचन किये गये कुछ अन्य तीन-तीन विषय हैं

अकुशलमूल (लोभ, द्वेष, मोह);

धातु (रूपधातु, अरूपधातु, निरोधधातु);

आस्रव (कामास्रव, भवास्रव, अविद्यास्रव);

तृष्णाएं (कामतृष्णा, भवतृष्णा, विभवतृष्णा);

चक्षु (मांसचक्षु, दिव्यचक्षु, प्रज्ञाचक्षु);

काल (अतीत, अनागत, वर्तमान);

दुराचार (कायिक, वाचिक, मानसिक);

सदाचार (कायिक, वाचिक, मानसिक);

मौन (कायिक, वाचिक, मानसिक);

पुत्र (अतिजात, अनुजात, अवजात)।

चौथा निपात

इसके सुत्तों में चार-चार बातों को लेकर दिये गये उपदेश संगृहीत हैं। जैसे

'भिक्षुओ! जानने वाले देखने वाले के आश्रव क्षीण होते हैं, न जानने वाले, न देखने वाले के नहीं –ऐसा मैं कहता हूं। क्या जानने, देखने से आस्रवों का क्षय होता है? यह दुःख है, यह दुःख की उत्पत्ति है, यह दुःख का निरोध है, यह दुःख का निरोध कराने वाला मार्ग है –इन्हें जानने, देखने से आस्रवों का क्षय होता है'।

'ऋजु-मार्ग का अनुसरण करने वाले, अभ्यास में लगे हुए शैक्ष्य को अर्हत मार्ग में प्रथम ज्ञान होता है, तदनंतर अरहत्वज्ञान और तदुपरांत अरहत्वफल से (प्रज्ञा-)विमुक्ति का उत्कृष्ट ज्ञान। तब, 'सारे बंधन क्षीण हो गये' –उसमें इस प्रकार का क्लेशों के क्षय होने का ज्ञान उत्पन्न होता है। सारी ग्रंथियों का भेदन करने वाले निर्वाण को आलसी, मूर्ख तथा अबोध द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता।'

इस निपात में विवेचन किये गये कुछ अन्य चार-चार विषय हैं

सुलभ वस्तुएं (पांशुकूल चीवर; भिक्षा का अन्न; वृक्षमूल; गोमूत्र),

तृष्णा की उत्पत्तियां (चीवर हेतु; पिंडपात हेतु; शयनासन हेतु; यह लोक मिले, यह न मिले – इस हेतु), तथागत को 'तथागत' कहने के चार कारण ।

'इतिवुत्तक' में स्मृति, संप्रज्ञान एवं विपश्यना से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष संबंध रखने वाले बहुत से पद हैं जिससे विपश्यना करने वालों के लिए यह ग्रंथ विशेष रूप से उपयोगी है।

कतिपय उदाहरण

* लोभ, द्वेष, मोह, क्रोध, म्रक्ष एवं मान को विपश्यना करने वाले सम्यक प्रकार से जान कर छोड़ देते हैं ('सम्मदञ्ञाय पजहन्ति विपस्सिनो') ।

* स्मृतिमान और संप्रज्ञानी क्रमशः सारे संयोजनों का क्षय कर डालता है। ('सम्पजानो पतिस्सतो पापुणे अनुपुब्बेन सब्बसंयोजनक्खयं')।

* जब आर्यसत्यों को सम्यक-प्रज्ञा से देखता है ('यतो च अरियसच्चानि सम्मप्पञ्ञाय पस्सति')।

* संसार में बींधने वाली प्रज्ञा ही श्रेष्ठ है ('पञ्ञा हि सेट्ठा लोकस्मिं, यायं निब्बेधगामिनी')।

* स्मृतिमान, ध्यानी सम्यक प्रकार से धर्मों की विपश्यना करते हैं ('सतिमन्तो च झायिनो सम्मा धम्मं विपस्सन्ति')।

* बुद्ध का श्रावक समाहित, संप्रज्ञानी एवं स्मृतिमान होता है ('समाहितो सम्पजानो, सतो बुद्धस्स सावको')।

* उस सतत-ध्यानी, पैनी दृष्टि से विपश्यना करने वाले को ('तं झायिनं साततिकं, सुखुमं – दिट्ठिविपस्सकं')।

* धर्मों और पांच स्कंधों के उदय-व्यय को सम्यक प्रकार से देखने वाला ('समवेक्खिता च धम्मानं, खन्धानं उदयब्बयं')।

सुत्तनिपात

'सुत्तनिपात' से अभिप्राय है सुत्तों का संग्रह। इसके प्रथम चार वर्गों में चौवन सुत्त हैं, परंतु पांचवें वर्ग में तीन गाथाएं और सोलह माणवकों के प्रश्न हैं। थोड़े में ही भगवान बुद्ध की शिक्षा को समझने के लिए यह एक अद्वितीय ग्रंथ है।

इस ग्रंथ में प्रतिपादित विषय-वस्तु का वर्ग-वार संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है।

१. उरगवग्ग

इस वर्ग के 'उरगसुत्त' में निर्वाण-प्राप्त भिक्षुओं के गुणों का वर्णन करते हुए सर्प द्वारा केंचुली छोड़ने के समान उनके इहलोक तथा परलोक को त्यागने की बात कही गयी है।

'धनियसुत्त' में धनिय गोप के साथ संवाद के रूप में भगवान द्वारा उसे बड़े मार्मिक ढंग से सांसारिक आसक्तियां त्यागने का उपदेश दिया गया है।

'खग्गविसाणसुत्त' में गैंडे के सींग के समान अकेले विचरण करने का उपदेश है : 'यह विपत्ति है, फोड़ा है, उपद्रव है, रोग है, कांटा है, भय है – कामभोगों में यह भय देख कर गैंडे के सींग की भांति अकेला विचरण करे।

'कसिभारद्वाजसुत्त' में भगवान ने स्वयं को कृषक बतलाया है। उनके कृषि-कार्य में श्रद्धा है बीज, तप वृष्टि, प्रज्ञा जुआठ और हल, लज्जा हल की फाल, मन नधना, स्मृति फाल और छेकुनी, वीर्य बैल और निर्वाण गाड़ी, जो आगे-से-आगे चलती जाती है। उनकी कृषि अमृतफलदायिनी होती है, जिसे करने से कोई भी व्यक्ति सारे दुःखों से मुक्त हो जाता है।

'चुन्दसुत्त' में चार प्रकार के श्रमणों की चर्चा है और 'पराभवसुत्त' में किसी भी पुरुष की अवनति के बारह कारणों पर प्रकाश डाला गया है। 'वसलसुत्त' में बतलाया गया है कि 'वृषल' (नीच) कौन होता है : 'कोई जाति से वृषल नहीं होता और न जाति से ब्राह्मण होता है। कर्म से ही कोई वृषल होता है और कर्म से ही ब्राह्मण।'

'मेत्तसुत्त' का विवेचन 'खुद्दकपाठ' के अंतर्गत किया जा चुका है।

'हेमवतसुत्त' और 'आळवक सुत्त' के अंतर्गत हेमवत तथा आळवक नाम के यक्षों द्वारा भगवान से अनेक सार्थक प्रश्न पूछे गये हैं, जिनका परम संतोषजनक उत्तर मिल जाने पर वे भावविभोर हो कहते हैं : 'अब हम गांव-गांव, पर्वत-पर्वत, नगर-नगर में सम्यक संबुद्ध और उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म की सुधर्मता को नमस्कार करते हुए विचरण करेंगे'।

'विजयसुत्त' में शरीर की गंदगियों और अनित्यता की ओर ध्यान आकर्षित करने के उपरांत भगवान ने अपने या दूसरे के शरीर के प्रति राग त्यागने की सीख दी है।

'मुनिसुत्त' में यह बतलाने के पश्चात कि मुनि कौन होता है, भगवान ने कहा है कि जैसे नीली गर्दन वाला मोर कभी भी उड़ान में हंस की बराबरी नहीं कर सकता, वैसे ही गृहस्थ भी भिक्षु की बराबरी नहीं कर सकता, जो मुनि हो, एकांत वन में ध्यान करता रहता है।

२. चूळवग्ग

'रतनसुत्त' तथा 'मङ्गलसुत्त' का विवेचन 'खुद्दक पाठ' के अंतर्गत किया जा चुका है।

'आमगन्धसुत्त' में कस्सप बुद्ध का कथन है कि जीवहिंसा, मार, काट, बंधन, चोरी, झूठ बोलना, छलकपट, ठगी, निरर्थक ग्रंथों का वाचन, परायी स्त्री का सेवन, इत्यादि आमगंध है, न कि मांस-भक्षण। 'हिरिसुत्त' में सच्चा मित्र उसे बतलाया गया है जो माता की गोद में सोये हुए पुत्र के समान विश्वास प्रदान करता है और दूसरों द्वारा फोड़ा नहीं जा सकता है। 'सूचिलोमसुत्त' में वासनाओं के मूल पर प्रकाश डाला गया है।

'धम्मचरियसुत्त' में दुराचारी भिक्षु को कचरा जान संघ से अलग करने की देशना की गयी है। 'ब्राह्मणधम्मिक सुत्त' के अंतर्गत प्राचीन ब्राह्मणों के धर्म बतलाये गये हैं और कहा गया है कि पहले तीन ही रोग होते थे – इच्छा, भूख और बुढ़ापा, किंतु पशुवध से वे अट्ठानवे हो गये हैं।

'नावासुत्त' में कहा गया है कि जिससे धर्म का ज्ञान प्राप्त हो, उसकी वैसे ही अर्चना करनी चाहिए जैसे कि देवता इंद्र की करते हैं। 'किंसीलसुत्त' में इस प्रश्न का उत्तर मिलता है कि किस शील, किस आचरण और किन कर्मों को सम्यक

रूप से करने में लगा हुआ व्यक्ति अरहत्व प्राप्त कर लेता है। 'उट्ठानसुत्त' प्रमाद में पड़े हुए व्यक्तियों को झकझोरने का काम करता है : 'उठो, बैठो, तुम्हें सोने से क्या मतलब? कांटा चुभने से व्यथित रोगियों को नींद कैसी?

'राहुलसुत्त' में वह उपदेश निबद्ध है जिसे आयुष्मान राहुल को भगवान नित्यप्रति दिया करते थे। 'निग्रोधकप्पसुत्त' में भगवान ने यह संशय मिटाया है कि आयुष्मान वङ्गीस के उपाध्याय कप्पायन ने आसक्ति के हेतु को जानकर अति दुस्तर मृत्यु के राज्य को पार कर लिया है।

'सम्मापरिब्बाजनीयसुत्त' में भिक्षुओं के आचरणीय धर्मों और 'धम्मिकसुत्त' में भिक्षुओं तथा गृहस्थों के धर्मों को उजागर किया गया है।

३. महावग्ग

'पब्बज्जासुत्त' में भगवान की प्रव्रज्या का वर्णन है। गृहस्थ जीवन को बाधाओं से भरा हुआ और प्रव्रज्या को खुले आकाश के समान जान कर वे प्रव्रजित हुए। 'पधानसुत्त' में मार की पराजय का उल्लेख है। इसमें मार की स्वीकारोक्ति है कि मैं सात वर्ष तक भगवान के पीछे लगा रहा, परंतु स्मृतिमान सम्यक संबुद्ध ने मुझे कोई अवकाश नहीं दिया।

'सुभासितसुत्त' में सुभाषित के चार अंग बतलाये गये हैं : 'सुभाषित हो, दुर्भाषित नहीं; धर्म हो, अधर्म नहीं; प्रिय हो, अप्रिय नहीं; और सत्य हो, असत्य नहीं।'

'सुन्दरिकभारद्वाजसुत्त', 'माघसुत्त', 'सभियसुत्त' तथा 'सेलसुत्त' में सुन्दरिक भारद्वाज, माघ, सभिय तथा सेल नाम के ब्राह्मणों ने भगवान से अनेक प्रश्न करके अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त किया और उनकी वाणी से प्रभावित होकर बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण में चले गये। इनमें से माघ को छोड़कर शेष तीन के प्रव्रजित होकर अरहत्व प्राप्त कर लेने का भी उल्लेख है।

'सल्लसुत्त' में जीवन की अनित्यता प्रज्ञप्त की गयी है : 'जैसे कुम्हार द्वारा बनाये गये मिट्टी के बर्तन सभी टूट जाने वाले हैं, ऐसा ही प्राणियों का जीवन है।' 'वासेट्ठसुत्त' में वर्ण-व्यवस्था का खंडन किया गया है : 'जन्म से न ब्राह्मण होता है, न अ-ब्राह्मण। कर्म से ही ब्राह्मण होता है, और अ-ब्राह्मण भी। कर्म से ही कृषक होता है, और शिल्पी भी। कर्म से ही बनिया होता है, और सेवक भी।

कर्म से ही चोर होता है, और सैनिक भी। कर्म से ही पुरोहित होता है, और राजा भी। प्रतीत्यसमुत्पाद को देखने वाले और कर्मों के विपाक को जानने में निपुण पंडित-जन कर्म को इस प्रकार यथार्थतः जानते हैं।

'कोकालिक सुत्त' में संत पुरुषों की निंदा करने वालों की दुर्गति होना दर्शाया गया है : 'जो दोषरहित, शुद्ध, निर्मल पुरुष को दोष लगाता है, उसका पाप उल्टी हवा में फेंकी गयी सूक्ष्म धूलि के समान उसी मूर्ख पर जा चिपटता है।. . . अतः पवित्र, सदाचारी साधुओं के प्रति अपनी वाणी और मन को सदा संयत रखे।'

'नाळक सुत्त' में असित ऋषि के भांजे नाळक को भगवान ने यह समझाया है कि बेघर होकर भिक्षा पर जीने वाला उत्तम पद को कैसे प्राप्त करे : 'तालु से जीभ सटा कर पेट के प्रति संयमी बने। आलस्य रहित चित्त वाला बने, बहुत चिंतन न करे,दुराचार से दूर रहे, अनासक्त हो और ब्रह्मचर्य का पालन करे।'

'द्वयतानुपस्सनासुत्त' में प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धांत के अनुसार दुःख की उत्पत्ति और निरोध पर प्रकाश डाला गया है।

४. अट्ठक वग्ग

'कामसुत्त' में कामभोगों के दुष्परिणामों और 'गुहट्ठक सुत्त' में संसार की असारता का बखान किया गया है। 'दुट्ठट्ठक सुत्त' में बतलाया गया है कि मुनि जन किसी दृष्टिविशेष के फेर में नहीं पड़ते हैं।

'सुद्धट्ठक सुत्त' के अनुसार अनासक्ति से ही मुक्ति संभव होती है, अन्यथा मनुष्य बंदर के समान एक शाखा छोड़ दूसरी शाखा पकड़कर चलता रहता है । 'परमट्ठक सुत्त' के अनुसार अरहंत किसी दार्शनिक विवाद में नहीं पड़ता है ।

'जरासुत्त' में जीवन की अल्पता, असारता और 'तिस्समेत्तेय्यसुत्त' में मैथुन त्यागने की चर्चा है। 'पसूरसुत्त' में यह उपदेश निहित है कि दृष्टि को लेकर किसी विवाद में नहीं पड़ना चाहिए। फिर भी यदि कोई विवाद के लिये आगे आये और कहे कि 'यही सच है', तो उसे कहना चाहिए कि यहां बहस करने के लिये कोई नहीं है। 'मागण्डियसुत्त' में भी भगवान ने दृष्टिवाद का खंडन कर निर्वाण-प्राप्ति का मार्ग बतलाया है।

'पुराभेदसुत्त' के अंतर्गत स्पष्ट किया गया है कि जिसका लोक में अपना कुछ

नहीं है, जो अभाव के बारे में कुछ नहीं सोचता है और सिद्धांतों में नहीं पड़ता है, वह 'शांत' कहलाता है।

'कलह-विवादसुत्त' में कलह एवं विवाद के कारणों पर प्रकाश डाला गया है। 'चूळब्यूहसुत्त' में प्रज्ञप्त किया गया है : 'सत्य तो एक ही है, दूसरा है ही नहीं, जिसके बारे में लोग परस्पर विवाद करें। परंतु नाना मत वाले श्रमण अपनी ओर से नाना सत्यों की घोषणा करते रहते हैं जिससे ये सब एक ही बात नहीं बोलते हैं।' 'महाब्यूहसुत्त' में भगवान का संदेश है कि सभी शील-व्रत तथा सदोष-निर्दोष कर्मों को छोड़ कर, और शुद्धि-अशुद्धि की कामना न करते हुए विरक्त होकर शांति के लिए विचरण करे।

'तुवटकसुत्त' में भिक्षुओं की चर्या पर प्रकाश डालने के बाद कहा गया है कि भिक्षु स्मृतिमान रह कर भगवान की शिक्षा का ससम्मान अभ्यास करे। 'अत्तदण्डसुत्त' में बुद्ध के घर छोड़ने का कारण प्रज्ञप्त किया गया है। 'सारिपुत्तसुत्त' के अंतर्गत सारिपुत्त ने बंधन में जकड़े हुए बहुत से प्राणियों की ओर से भगवान से अनेक प्रश्न किये जिनका उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर समाधान किया और अंततः भिक्षुओं को स्मृतिमान रह अंधकार का नाश करने के लिए आह्वान किया।

५. पारायनवग्ग

'कथावत्थु' में इस बात का उल्लेख है कि बावरी ब्राह्मण द्वारा महायज्ञ संपन्न किये जाने पर जब एक याचक द्वारा उससे पांच सौ कार्षापण मांगे गये तो वह इन्हें देने में असमर्थ रहा। इस पर याचक ने उसे कहा कि इन्हें नहीं देने पर सातवें दिन तुम्हारा सिर सात टुकड़ों में फट जायगा।

याचक के इन वचनों से भयभीत होकर बावरी ब्राह्मण ने वेदों में पारंगत अपने सोलह शिष्यों को भगवान के पास यह जानकारी करने के लिए भेजा कि 'सिर' क्या होता है और 'सिर का फटना' क्या? इस पर भगवान ने कहा कि 'अविद्या' को सिर जानो और 'श्रद्धा, स्मृति, समाधि, छंद तथा वीर्य से युक्त विद्या' को सिर का फटना।

तदनंतर अजित, तिस्समेत्तेय्य, पुण्णक आदि नाम वाले उन सोलह माणवकों ने एक एक करके भगवान से अनेक गंभीर प्रश्न किये, यथा-

–संसार किससे ढका हुआ है? किससे प्रकाशित नहीं होता? इसका क्या आलेप है? उसके लिए क्या महाभय है?

–सर्वत्र तृष्णा की धाराएं बहती हैं। इनका क्या निवारण है, और क्या संवर? ये धाराएं किससे बंद होती हैं?

– प्रज्ञा, स्मृति और नाम-रूप का कहां अंत होता है?

– इस संसार में कौन संतुष्ट है? किसमें चंचलताएं नहीं होतीं?

– ऋषियों, मुनियों, क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों ने देवताओं के लिए किस कारणवश इतने यज्ञ किए? क्या वे जन्म और बुढापे से पार हो गये?

–जिसमें न तो वासनाएं हों, न तृष्णा; और जो संदेह से परे चला गया हो, उसका विमोक्ष कैसा होता है?

–लोक का बंधन क्या है? उसकी खोज क्या है? किसके त्याग को निर्वाण कहा जाता है?

–संसार को किस रूप में देखने वाले को मृत्युराज नहीं देख पाता है ? इत्यादि।

भगवान ने सभी प्रश्नों का उत्तर दिया और सदा स्मृतिमान रह कर सर्व प्रकार की आसक्तियों को त्यागने पर बल दिया।

'पारायनत्थुतिगाथा' में यह बतलाया गया है कि माणवकों द्वारा भगवान को पूछे गये एक-एक प्रश्न के संदर्भ में उन्होंने जो उत्तर दिये हैं, उनके अर्थ और धर्म को जानकर इन पर आचरण करने से कोई भी व्यक्ति जन्म-मरण के पार जा सकता है। पार ले जाने वाले धर्मों की चर्चा होने के कारण इस धर्मोपदेश को 'पारायन' संज्ञा दी गयी है।

'पारायनानुगीतिगाथा' के अंतर्गत पिङ्गिय माणव की भावाभिव्यक्ति है : 'निर्वाण अजेय है, अविचल है। इसकी किसी से कोई तुलना नहीं है। मैं इसे अवश्य प्राप्त करूंगा। इस बारे में मुझे कोई संशय नहीं है'।

विमानवत्थु

'विमानवत्थु' से आशय है विमानों अथवा देवभूमियों के प्रकरण। इस ग्रंथ के दो भाग हैं –इत्थिविमान तथा पुरिसविमान। पहले भाग में स्त्री और दूसरे भाग में पुरुष की देवभूमियों का वर्णन है।

'विमानवत्थु' में पचासी देवभूमियां वर्णित हैं जो सात वर्गों में विभाजित हैं। इनमें से पचास इत्थिविमान और पैंतीस पुरिसविमान के अंतर्गत हैं। इन सब में यही बतलाया गया है कि अमुक देवता अथवा देव द्वारा अपने मनुष्य-जीवन में कौनसा पुण्य-कर्म किया गया था जिसके परिणामस्वरूप उसे देवभूमि प्राप्त हुई।

देवभूमियों के नामों, आकारों और कुछेक आमोद-प्रमोदों को छोड़ कर इन सबकी वर्णना-शैली और मूल-भावना लगभग एक-सी है।

मनुष्य-जीवन में संपादित पुण्य-कर्मों के कतिपय उदाहरण इस प्रकार से हैं

* अतिथियों को आसन देना, उनका हाथ जोड़ कर अभिवादन करना और उन्हें उनके अनुरूप दान देना;

* भिक्षाटन पर निकले भिक्षु को खीर, पुआ, ककड़ी, मुट्ठी-भर साग अथवा छाता, जूते, पंखा इत्यादि देना;

* विपन्न होते हुए भी बूढ़े माता-पिता का भरण-पोषण;

* विहार में वृक्षारोपण, और भीषण ताप होने पर वृक्षों को पानी देना;

* प्रसन्न चित्त से अपने हाथों से भगवान के स्तूप पर माल्यार्पण;

* विद्या और आचरण से संपन्न, तृष्णा के क्षय को प्राप्त हुए, बहुश्रुत, यशस्वी, शीलवान श्रमणों को देख कर उन्हें प्रसन्न चित्त से सत्कारपूर्वक जलपान कराना और खूब दान देना; इत्यादि।

शील-सदाचार का जीवन जीने और उक्त प्रकार से दान देने से भी देवभूमियों का प्राप्त होना दर्शाया गया है, अर्थात प्राणि-हिंसा से विरत रहना, न दी गयी वस्तु को ग्रहण न करना, नशा-पता न करना, झूठ न बोलना, पति-पत्नी का परस्पर संतुष्ट रहना और (लोगों को) प्रसन्न चित्त से सत्कारपूर्वक जलपान कराना और प्रचुर मात्रा में दान देना।

ऐसे ही प्रमुदित मन से उपोसथ रखने, अरहंत का सम्मान करने, संघ के उद्देश्य से दान देने, इत्यादि से भी देवयोनि प्राप्त होना बतलाया गया है।

'विमानवत्थु' में एक ऐसा देवता भी है जिसे लगता है कि देवभूमिविशेष प्राप्त कर लेने पर भी मेरे पुण्य-कर्म का पूरा परिपाक अभी नहीं हुआ है, और उसे आशा है कि संभवतः मैं 'सकदागामिनी' हो जाऊं (देखिए 'विसालक्खिविमानवत्थु')।

पेतवत्थु

'पेतवत्थु' से आशय है 'प्रेतों के प्रकरण'। इस ग्रंथ में ऐसे इक्यावन प्रकरण हैं, जो चार वर्गों में विभाजित हैं।

इन प्रकरणों में मुख्यतया यह बतलाया गया है कि अमुक प्रेत-प्राणी द्वारा अपने मनुष्य-जीवन में कौन सा दुष्कर्म किया गया था जिसके परिणामस्वरूप उसे प्रेत-योनि प्राप्त हुई है जहां घोर कष्ट उठाना पड़ रहा है।

मनुष्य-जीवन में संपादित दुष्कर्मों के कतिपय उदाहरण इस प्रकार से हैं

* वृक्ष-तले ध्यान करते हुए बुद्ध के मस्तक पर गुलेल से प्रहार करना;

* किसी ऋषि के भिक्षा-पात्र को जमीन पर पटक कर फोड़ डालना और उसका मजाक उड़ाना;

* स्त्री होते हुए अपनी सौत का गर्भ गिराना, और फिर झूठी शपथ खाना कि मैंने यह काम नहीं किया है;

* धनाढ्य होते हुए भी किसी को दान न देना, याचकों से छिप कर भोजन करना, और दानियों को दान देने से रोकना;

* दूसरों की हिंसा कर अपने हाथों को खून से रंगना;

* विविध प्रकार का असंयत आचरण, यथा झूठ बोलना, चुगली खाना, कठोर वचन बोलना, दूसरों की निंदा करना, ईर्ष्या करना, मात्सर्य-युक्त होना, इत्यादि।

प्रेत-प्राणियों का वर्णन बड़ा भयावह एवं लोमहर्षक है; नग्न, दुर्वर्ण, कृश, नसों के जाल से संछन्न, पसली-मात्र दिखाई देने वाले, लंबे केशों से ढके हुए, विकृत मुख वाले, सड़ांद बिखेरते हुए, भूख-प्यास से परेशान, बिना घर-घाट के, त्राण-रहित, पागल सा, दुःखद वेदनाओं को अनुभव करते हुए।

ये प्रेत जहां-कहीं जाते हैं, इनका दुर्भाग्य इनके साथ-साथ चलता प्रतीत होता है। तृषा से व्याकुल एक प्रेतनी नदी तक जा पहुँचती है, पर वह रीती मिलती है; गर्मी में छाया के पास जाती है, पर वहां धूप मिलती है; खाने की तलाश में अनेक योजन भटकने पर भी खाली हाथ लौटना पड़ता है। ऐसे ही तृषा से व्याकुल एक

अन्य प्रेतनी भी शीतल जल वाली गंगा के पास जा पहुँचती है, परंतु इसका सेवन उसके भाग्य में नहीं है – क्योंकि इसका जल उसके लिए लहू होता है।

लोगों का रोना-धोना अथवा अन्य किसी प्रकार से शोक करना इन प्रेत-प्राणियों के काम नहीं आता है। ये पास ही विद्यमान हों और इन्हें कुछ दिया जाय, तो भी ये इसे ग्रहण नहीं कर सकते। इनके निमित्त किसी को दान-दक्षिणा देने पर ही इनको उसका प्रतिफल प्राप्त होता है। उदाहरणतया, भिक्षु-संघ को अन्न, पान, चीवर इत्यादि से संतुष्ट करते हुए उस दान-दक्षिणा का प्रतिफल किसी प्रेत-प्राणी के निमित्त समर्पण किया जाय तभी उसे इसका लाभ प्राप्त होता है।

चिरकाल से भयंकर यातनाएं सहते हुए प्रेत-प्राणियों को भविष्य में दुष्कर्मों से बचने और सत्कर्मों को करने की सीख मिली प्रतीत होती है, जैसे कि उनके कथन हैं:

* प्रकट रूप से या प्रच्छन्न रूप से पाप-कर्म मत करो, अन्यथा दु:ख से छुटकारा नहीं होगा।

* अब मनुष्य योनि मिलने पर मैं उदारचेता एवं शीलसंपन्न होकर बहुत से कुशल कर्म करूंगा।

'पेतवत्थु' में दान से संबंधित अनेक पद गृहस्थों के लिए बड़े प्रेरणाजनक हैं

* यदि देवताओं का राजा सक्क (शक्र) मुझे कोई वर देना चाहे, तो मैं उससे यह वर मांगूं: 'मेरे दान देते समय इसके पुण्य का क्षय न हो, दान देकर मुझे अनुताप न हो, और दान देते समय मेरा चित्त प्रसन्नता से भरा रहे।'

* भिखारी को देख कर जिसका चेहरा खिल उठता है और वह आत्मविभोर हो जाता है, उसके घर में सुख निवास करता है।

* जैसे बंजर खेत में बोये गये बहुत से बीज का भी प्रचुर फल नहीं होता है और न ही यह कृषक को संतुष्टि प्रदान करता है, वैसे ही दु:शीलों को दिये गये बहुत से दान का भी प्रचुर फल नहीं होता है और न ही यह दाता को संतुष्टि प्रदान करता है;

जैसे उत्तम खेत में बोया गया थोड़ा-सा भी बीज खूब बरसा होने पर भरपूर फसल देकर कृषक को संतुष्टि प्रदान करता है, वैसे ही गुण-संपन्न शीलवंतों के प्रति किया गया थोड़ा-सा भी सत्कृत्य महान पुण्य में बदल जाता है;

अतः सोच-विचार कर वहीं दान देना चाहिए जहां देने से महान फल प्राप्त होता हो। सोच-विचार कर दान देने वाले स्वर्ग-गामी होते हैं।

☸

थेरगाथा

इस ग्रंथ में दो सौ चौसठ स्थविरों के उद्गार हैं, जो गाथाओं के रूप में हैं। गाथाओं की संख्या एक सहस्र दो सौ अठासी है, जो इक्कीस निपातों में विभक्त है। जिन स्थविरों की वाणी में एक-एक गाथा है उनका संग्रह 'एकक-निपात' में, जिनकी वाणी में दो-दो गाथाएं हैं उनका संग्रह 'दुक-निपात' में, और इसी प्रकार बढ़ते क्रम से साठ से अधिक गाथाएं 'महानिपात' के अंतर्गत हैं।

ये सभी स्थविर अपने-अपने आस्रवों का समूल नाश कर निर्वाणिक अवस्था प्राप्त किये हुए हैं। जीवन की चरम उपलब्धि कर लेने के कारण इनके उद्गार 'सिंहनाद' के समान हैं। इन्हीं में से भरत नाम का एक स्थविर नन्दक को आव्हान करके कहता भी है कि आओ चलें बुद्धश्रेष्ठ के पास, और वहां चल कर 'सिंहनाद' करें कि हमने सारे संयोजनों का क्षय कर लिया है ।

चूंकि विपश्यी साधक की भी यही मनोकामना रहती है कि सतत परिश्रम करके अपने सारे संयोजनों का क्षय कर ले और निर्वाणिक अवस्था का साक्षात्कार करे, अतः स्थविरों के ये 'सिंहनाद' उसके लिए प्रेरणा के अनुपम स्रोत हैं।

कुछेक प्रेरणाजनक संदर्भ इस प्रकार से हैं

* जो सारी रात सो कर दिन में मेल-मिलाप करने में लगा रहता है, वह कुबुद्धि कब अपने दुःखों का अंत करेगा? (नीतत्थेरगाथा)

* कातियान! उठ, बैठ। निद्राबहुल मत हो, सचेत हो। कहीं प्रमादियों का सखा मृत्युराज तुझ आलसी को धोखे से जीत न ले। (कातियानत्थेरगाथा)

* शुरू कर दो, निकल पड़ो, बुद्ध की शिक्षा में जुट जाओ। मृत्यु की सेना को वैसे ही हिला दो, जैसे सरकंडों के बने घर को कोई हाथी हिला देता है। (अभिभूतत्थेरगाथा)

* नहर खोदने वाले पानी को ले जाते हैं, बाण बनाने वाले बाण को ठीक करते हैं, बढ़ई लकड़ी को ठीक करते हैं और सुव्रती स्वयं का दमन करते हैं। (कुलत्थेरगाथा)

* जैसे भद्र, उत्तम जाति का बैल फिसल कर फिर उठ खड़ा होता है,

वैसे ही सम्यक संबुद्ध का दर्शनसंपन्न श्रावक भी (फिसल-फिसलकर फिर उठ खड़ा होता है)। (रमणीयविहारित्थेरगाथा)

* बर्छी से आहत हुए के समान, सिर में आग लगे हुए के समान, कामराग के विनाश के लिए भिक्षु स्मृतिमान हो, विचरण करे।(तिस्सत्थेरगाथा)

* मैं श्रद्धा से प्रव्रजित हुआ हूं। मैंने जंगल में कुटिया बना ली है । मैं अप्रमत्त हूं, उद्योगशील हूं, संप्रज्ञानी हूं, स्मृतिमान हूं। (कोसलविहारित्थेरगाथा)

* अब भिक्षु में ये बातें बिल्कुल नहीं रही हैं : राग, द्वेष, आलस्य, अभिमान और संशय। (सुयामनत्थेरगाथा)

* दो वर्षों में मैं एक ही शब्द बोला हूं। तीसरे वर्ष में मैंने अविद्या के आवरण को भेद डाला है। (गङ्गातीरियत्थेरगाथा)

* मैं स्वयं को (संसार-) सलिल से उठा कर (निर्वाण-) स्थली पर रख पाया हूं। (संसार के) पृथुल प्रवाह में बहा कर ले जाये जाते हुए मैंने चार आर्यसत्यों को बींध लिया था। (अज्जुनत्थेरगाथा)

* मुझे पांचों स्कंधों का परिज्ञान हो गया है, अब इनकी जड़ कट गयी है। मेरे आस्रवों का क्षय हो गया है, दुःखों का अवसान हो गया है। (इसिदत्तत्थेरगाथा)

* शील के नियमों में प्रतिष्ठित हो, स्मृति और प्रज्ञा की भावना कर मैं क्रमशः सभी बंधनों के क्षय को प्राप्त हुआ हूं। (काळिगोधापुत्तभद्दियत्थेरगाथा)

* मेरा सारा राग निकल गया है, द्वेष उखड़ गया है, मोह चला गया है। मैं शीतल हो गया हूं, निर्वाण-प्राप्त हूं। (रक्खितत्थेरगाथा)

* सम्यक संबुद्ध द्वारा उपदिष्ट निर्वाण सचमुच अपूर्व सुख देने वाला है। यह है शोक-रहित, रज-रहित, क्षेमयुक्त – जहां दुःख का निरोध हो जाता है। (बाकुलत्थेरगाथा)

* पहले मैं खून से रंगे हाथों वाला नामी चोर अङ्गुलिमाल था। मेरा (बुद्ध-)शरण-गमन देखो, मेरी (तृष्णा-रूपी) भव-रज्जु का समूल नाश हो गया है। (अङ्गुलिमालत्थेरगाथा)

* जन्म से सात वर्ष का होने पर मैंने उपसंपदा पायी। देखो धर्म की महिमा! आज मैं अंतिम देह धारण किये हुए हूं। (सोपाकत्थेरगाथा)

* नीच कुल में पैदा हुआ मैं मनुष्यों द्वारा घृणित, तिरस्कृत एवं निंदित था। कारुणिक शास्ता से उपसंपदा पा कर मैंने तंद्राविहीन रह कर अकेले जंगल में विहार करते हुए उन्होंने जैसा-जैसा कहा, वैसा-वैसा काम किया। अब रात के पहले प्रहर में मुझे पूर्वजन्मों का स्मरण हो आया है, बिचले प्रहर में दिव्य चक्षु विशुद्ध हुआ है और अंतिम प्रहर में अज्ञान का आवरण नष्ट हो गया है। (सुनीतत्थेरगाथा)

* मैं पहले था निंदित ब्राह्मण (ब्रह्मबंधु), अब हूं (यथार्थ) ब्राह्मण – त्रैविद्य, स्नातक, श्रोत्रिय, वेदगू (वेदनाओं का जानकार)! (अङ्गणिक भारद्वाजत्थेरगाथा)

* पचपन वर्षों से मैं लेटा नहीं हूं, पच्चीस वर्षों से आलस्य पूरी तरह से उन्मूलित है। (अनुरुद्धत्थेरगाथा)

* मैं पांच दिन पहले ही प्रव्रजित हुआ और विहार में प्रवेश करने पर मेरे मन में संकल्प जागा –'मैं न तो कुछ खाऊंगा, न पीऊंगा, न लेटूंगा, न विहार से बाहर आऊंगा, जब तक कि तृष्णा-रूपी शल्य को बाहर न निकाल दूं।' देखो, मेरा वीर्य और पराक्रम! मैंने तीनों विद्याओं को पा लिया है, बुद्ध की शिक्षा को पूरा कर लिया है। (पच्चयत्थेरगाथा)

* मैं पहले जटाधारी था और सिद्धि अत्यल्प थी। तब उसे छोड़ मैं बुद्ध-शासन में प्रव्रजित हो गया। अब मैंने राग, द्वेष और मोह का समूल नाश कर लिया है। अब मैं पूर्वजन्मों को जानता हूं, मेरा दिव्य चक्षु विशुद्ध है, मैं ऋद्धिमान हूं, दूसरों के चित्त को जान लेता हूं और दिव्य श्रोत्र प्राप्त किये हुए हूं। मैं जिस उद्देश्य से घर से बेघर होकर प्रव्रजित हुआ था, मैंने सारे संयोजनों का क्षय करके उस उद्देश्य की पूर्ति कर ली है। (उरुवेळकस्सपत्थेरगाथा)

* मुझे न तो मरने की चाह है, न जीते रहने की। मुक्त हुए भृत्य के समान मैं अपने समय की प्रतीक्षा करता हूं। (खदिरवनियरेवतत्थेरगाथा)

इनके अतिरिक्त कितने ही स्थविर ऐसे हैं जो भिन्न-भिन्न प्रकार से अपनी उपलब्धि का बखान करते हुए यह 'सिंहनाद' करते हैं –'नत्थि दानि पुनब्भवो' (अब नया जन्म नहीं है)

–मेरी सारी कामनाएं प्रहीण हो गयी हैं, सारे भव नष्ट हो गये हैं, जन्मों का सिलसिला छिन्न-भिन्न हो गया है, अब नया जन्म नहीं है। (स्थविर उत्तरपाल)

–मैंने जो थोड़ा या बहुत कर्म किया था, वह सब पूरी तरह से क्षीण हो गया है, अब नया जन्म नहीं है। (स्थविर उग्ग)

–स्कंध यथाभूत देख लिये गये हैं, सारे भव नष्ट हो गये हैं, जन्मों का सिलसिला छिन्न-भिन्न हो गया है, अब नया जन्म नहीं है। (स्थविर पविट्ठ)

–मैंने दुःख का अंत कर दिया है, यह आखिरी जमावड़ा है, जन्म-मरण का सिलसिला समाप्त हो गया है, अब नया जन्म नहीं है। (स्थविर वड्ढ)

–मेरा संकल्प परिपूर्ण हो जाने से मैं पंद्रहवीं के चांद के समान हूं, मेरे सारे आस्रव पूरी तरह क्षीण हो गये हैं, मेरा अब नया जन्म नहीं है । (स्थविर एकविहारिय) कुछ अन्य अविस्मरणीय उदान-वचन हैं

* 'अप्रमत्त होकर अपने लक्ष्य का संपादन करो' – यह मेरी शिक्षा है। (स्थविर सारिपुत्त)

* सचमुच सारे संस्कार अनित्य हैं, ये उत्पत्ति और विनाश स्वभाव वाले हैं। ये उत्पन्न हो-होकर निरुद्ध हो जाते हैं। इनका नितांत उपशमन ही वास्तविक 'सुख' है। (स्थविर महामोग्गल्लान)

* जिस प्रकार समीर से उठी हुई धूल मेघ से शांत हो जाती है, उसी प्रकार प्रज्ञा से देखने पर मन के संकल्प शांत हो जाते हैं। (स्थविर अञ्ञासिकोण्डञ्ञ)

* पांच अंगों वाले तूर्य-वाद्ययंत्र से भी वैसा आनंद नहीं प्राप्त होता है जैसा कि एकाग्रचित्त हुए सम्यक रूप से विपश्यना करने वाले व्यक्ति को! (स्थविर कुल्ल)

☸

थेरीगाथा

इस ग्रंथ में पांच सौ चौबीस गाथाएं हैं, जो मुख्यतया निर्वाण-प्राप्त स्थविराओं के उद्गार हैं। थेरगाथा के समान ही ये उद्गार भी निपातों में विभक्त हैं –'एकक निपात' से लेकर 'महानिपात' तक। निपातों की संख्या सोलह है।

कुछ गाथाएं स्थविराओं के सामूहिक उद्गार हैं। सामूहिक उद्गार करने वाली स्थविराओं की पृथक-पृथक गणना करने पर स्थविराओं की कुल संख्या सैंकड़ों में चली जाती है, अन्यथा इनकी संख्या तेहत्तर है।

स्थविरों के समान ही स्थविराओं के उद्गार भी उनकी उच्च आध्यात्मिक उपलब्धियों को प्रकाश में लाते हैं, जो साधकों-साधिकाओं के लिए प्रेरणा के अपूर्व स्रोत हैं।

कतिपय उदाहरण

* कड़ाही में पड़े हुए शुष्क साग के समान राग (दग्ध होकर) शांत हो गया है। (अञ्ञतरा)

* मेरा कांटा निकल गया है, मैंने अपना भार उतार फेंका है, मुझे जो करना था वह सब कर लिया है। (किसागोतमी)

* पुरुषार्थ में लगे हुए, आत्म-संयमी, नित्य दृढ़ पराक्रम करने वाले, एक-जुट हुए इन श्रावकों को देखो – यह है बुद्धों की वंदना! (महापजापतिगोतमी)

* घर-बार त्याग कर, प्रिय पुत्र और प्यारे पशु को तिलांजलि देकर, राग और द्वेष का विसर्जन कर और अविद्या को दूर कर, तृष्णा का समूल नाश कर मैं शांत हो गयी हूं और निर्वाण पाये हुए हूं। (सङ्घा)

* मैंने एक हाथी को जल में अवगाहन करने के पश्चात नदी किनारे बैठा देखा। तब एक अंकुशधारी पुरुष ने उसे आदेश दिया –'पांव पसार!' इस पर हाथी ने पांव पसारा और पुरुष उस पर चढ़ बैठा। अ-दान्त हाथी को दामित और मनुष्य के वशीभूत होते देख मैंने भी वन में प्रवेश कर चित्त को दान्त बना लिया। (दन्तिका)

* छोटे से विहार में बैठे हुए मुझ में संवेग जागा कि तृष्णा के वश में आ कर मैं गलत रास्ते में पड़ गयी हूं। मेरा आयु-काल समाप्त होने जा रहा है, बुढ़ापा और बीमारी मेरा मर्दन कर रहे हैं। इस देह के भंग हो जाने से पूर्व ही जो कुछ हो सकता हो, मुझे कर लेना चाहिए। अब प्रमाद करने का समय नहीं रहा है। मैंने तभी से स्कंधों की उत्पत्ति और विनाश का यथाभूत दर्शन करना आरंभ कर दिया और विमुक्त-चित्त होकर ही आसन छोड़ा। (मित्ताकाळी)

* चित्त को वश में न कर सकने के कारण मैंने भिक्षुणी (खेमा) से अपनी कठिनाई के बारे में पूछा। उसने मुझे परमार्थ की प्राप्ति के लिए धातु, आयतन, चार आर्य सत्य, इंद्रिय, बल, सात बोध्यंग और आर्य अष्टांगिक मार्ग का उपदेश दिया। मैंने इस उपदेश के अनुसार आचरण किया।इसके फलस्वरूप रात्रि के पहले प्रहर में मुझे पूर्वजन्मों का स्मरण हो आया, बिचले प्रहार में मैंने दिव्य चक्षुओं को विशोधित किया और अंतिम प्रहर में मैंने (अज्ञान-रूपी) अंधकार के पुंज को विदीर्ण कर डाला। (विजया)

अनेक स्थविराओं ने निर्वाण का साक्षात्कार कर न केवल अपना ही कल्याण किया, बल्कि दूसरों के परमार्थ में भी सहायक बनीं। ऐसी ही एक स्थविरा पटाचारा थी जिसके अनुशासन में रह कर सैंकड़ों भिक्षुणियों ने निर्वाण-लाभ किया।इन भिक्षुणियों ने पटाचारा के प्रति अपने उद्गार इस प्रकार से प्रकट किये हैं

–'अहो, अमोघ था देवी का उपदेश! मैं आज आस्रव-रहित और तीनों विद्याओं की ज्ञाता हूं।' (चन्दा)

– 'हमने तुम्हारे अनुशासन को पूरा कर लिया है। अब हम सब हैं आस्रव-रहित और तीनों विद्याओं की ज्ञाता! जैसे तीसों देवता रण-विजेता देवेंद्र को आगे किये रहते हैं, वैसे ही हम भी तुम्हें आगे कर तुम्हारे नेतृत्व में विचरण करती रहेंगी।' (तीस भिक्षुणियां)

–'पुत्र-शोक रूपी सूक्ष्म शल्य, जो मुझ शोकापन्न के हृदय में बिंधा हुआ था, वह निकल गया है। आज मैं शल्य-रहित, तृप्त और परिनिवृत्त हूं।' (पांच सौ भिक्षुणियां; इनकी पृथक-पृथक अभिव्यक्ति)

इन गाथाओं में ऐसे अनेक प्रसंग आये हैं जिनमें पापी मार ने स्थविराओं को मुक्ति के मार्ग से च्युत करने के लिए कुचेष्टाएं की हैं। जैसे-

–सेला को कहा: 'लोक में मुक्ति जैसी कोई चीज नहीं है, फिर एकांत-वास से तुझे क्या लाभ होगा? समय रहते कामभोगों का सेवन कर ले, कहीं पीछे पछताना न पड़े!'

–सोमा को कहा: 'जिस स्थान को ऋषियों द्वारा प्राप्त किया जाना भी दुष्कर है, उसे दो-अंगुल प्रज्ञा वाली स्त्री प्राप्त कर पाये, यह संभव नहीं है।'

–खेमा को कहा: 'तू रूपवती युवती है, मैं रूपवान युवक हूं। आओ! पांच अंगों से युक्त तूर्य-वाद्ययंत्र के साथ आनंद मनायें।'

–चाला को कहा: 'तूने किसलिए सिर मुंडवाया है? तू श्रमणी-सी दिखलायी दे रही है। तुझे मिथ्या-दृष्टि अपनाना उचित नहीं है।'

–उप्पलवण्णा को कहा: 'तू फूलों से लदे हुए इस साल-वृक्ष के तले अकेली बैठी है। यहां तेरे पास कोई दूसरा नहीं है। अरी नादान! तुझे धूर्तों से भय नहीं लगता क्या?'

इन स्थविराओं ने मार को ऐसे-ऐसे उत्तर दिये जिससे उसे मुँह की खानी पड़ी। उन्होंने कहा

–'कामभोग भाले की नोक के समान स्कंधों को छेदने वाले होते हैं। जिसे तू कामभोगों का आनंद कहता है, वह मेरे लिए घृणा की वस्तु है'।(सेला)

–'जब चित्त भली प्रकार समाहित हो और सम्यक प्रकार से धर्म की विपश्यना करने से ज्ञान में स्थित हो, भला उस अवस्था में किसी के स्त्री होने से क्या होता है?' (सोमा)

–'इस दुर्गंधयुक्त, रोगी और नश्वर शरीर से आनंद मनाने में मुझे लाज आती है। मैंने काम-तृष्णा की जड़ काट रखी है'।(खेमा)

–'मिथ्यादृष्टि-संपन्न लोगों से मेरा कोई सरोकार नहीं है। वे धर्म को नहीं जानते हैं। मैंने शाक्यकुलोत्पन्न अद्वितीय पुरुष बुद्ध से धर्म का ज्ञान प्राप्त किया है, जिससे मैं सारी दृष्टियों से परे चली गयी हूं।' (चाला)

–'तेरे जैसे एक लाख धूर्त्त भी आ जाएं तो मेरे एक रोएं को नहीं हिला सकते, न मुझे कंपायमान कर सकते हैं। तू अकेला मेरा क्या कर लेगा?' (उप्पलवण्णा)

इन स्थविराओं की इस उक्ति से मार का गर्व चूर-चूर हो गया:

‘हमारी तृष्णा सर्वथा समाप्त हो गयी है, और (अज्ञान-रूपी) अंधकार का पुंज विदीर्ण हो गया है। तू ऐसा समझ ले कि दूसरों को मारने वाला तू ही आज मार डाला गया है।’

अपदान

इस ग्रंथ के दो भाग हैं –'थेरापदान' तथा 'थेरीअपदान'।

'थेरापदान' में बुद्ध, पच्चेक बुद्ध और पुब्बकम्मपिलोतिक बुद्धके अपदानों के अतिरिक्त पांच सौ इकसठ स्थविरों के अपदान हैं, और 'थेरीअपदान' में चालीस स्थविराओं के। स्थविरों-स्थविराओं के अपदानों में उनके पूर्वजन्मों के गौरवपूर्ण कार्यों का उल्लेख है। ये सभी लोग गौतम बुद्ध के समकालीन हुए और इन्होंने उनकी शिक्षा को पूरा किया।

संपूर्ण ग्रंथ में गाथाएं-ही-गाथाएं हैं जिनका विभाजन वर्गों में किया हुआ है। 'थेरापदान' में वर्गों की संख्या छप्पन है, और 'थेरीअपदान' में चार। 'थेरापदान' के छप्पनवें वर्ग को छोड़कर, जिसमें ग्यारह अपदान हैं, शेष सभी में दस-दस अपदान हैं।

इस ग्रंथ के तीन अपदान – बुद्ध, पच्चेक बुद्ध तथा पुब्बकम्मपिलोतिक बुद्ध – स्वयं बुद्ध द्वारा उदीरित हैं और अन्य सभी अपदान संबंधित स्थविरों-स्थविराओं की अपनी-अपनी वाणी में हैं, जैसा कि प्रत्येक अपदान के अंत में उल्लेख है – 'इत्थं सुदं आयस्मा. . . थेरो इमा गाथायो अभासित्था'ति अथवा 'इत्थं सुदं. . . भिक्खुनी इमा गाथायो अभासित्था'ति ।

'बुद्धअपदान' में आनन्द के पूछने पर बुद्ध भगवान ने बतलाया है कि मैंने पारमिताओं को पूरा करके उत्तम संबोधि को प्राप्त किया है। उन्होंने यह भी बतलाया है कि बुद्धों की शिक्षा क्या है, अर्थात

* आलस्य को भयकारक, और पराक्रम को क्षेमकारक, जानकर पराक्रम करने में लग जाना;

* विवाद को भयकारक, और अ-विवाद को क्षेमकारक, जानकर सभी का एक-जुट हो जाना; और

* प्रमाद को भयकारक, और अ-प्रमाद को क्षेमकारक, जान कर अष्टांगिक मार्ग को भावित कर लेना।

'पच्चेक बुद्धअपदान' में आनन्द के पूछने पर भगवान ने बतलाया है कि पच्चेक बुद्ध बुद्धों के बिना ही खूब तीक्ष्ण प्रज्ञा वाले होते हैं और थोड़ा-सा

आलंबन मिलने पर भी बोधि प्राप्त कर लेते हैं। ये विशुद्ध शील वाले, सुविशुद्ध प्रज्ञा वाले, समाहित, जागरणशील, विपश्यना करने वाले और मार्गांगों तथा बोध्यंगों के विशेष जानकार होते हैं। ये सारे दुःखों को पार किये हुए, प्रसन्नचित्त, परमार्थद्रष्टा, सिंह-समान और गैंडे के सींग की तरह एकाकी विचरण करने वाले होते हैं।

'पुब्बकम्मपिलोतिक बुद्धअपदानं' में बुद्ध भगवान ने अनोतत्त सरोवर के पास पत्थर की चट्टान पर बैठ कर भिक्षु-संघ के समक्ष अपने पूर्वजन्मों की कर्म-कोथली (पुब्बकम्मपिलोतिक) को खोल कर बतलाया है कि मेरे बुद्धत्व प्राप्त कर लेने पर भी कैसे मेरे पूर्व-कर्म आज भी अपना विपाक दिखला रहे हैं। उन्होंने बतलाया है कि किन पूर्व-कर्मों के कारण मेरे अंतिम जीवन में ऐसी घटनाएं घटी हैं, जैसे कि चिंचा द्वारा मुझे अपशब्द कहना, देवदत्त द्वारा मुझ पर पत्थर फेंकना, नाळागिरि हाथी का भ्रांत होकर मेरे पास आना, मेरी पीठ दुखना, अतिसार होना इत्यादि। उनका कहने का भाव यह था कि कर्म का कभी नाश नहीं होता है ('न हि कम्मं विनस्सति')।

अन्य अपदानों में कथावस्तु का आख्यान कई प्रकार से हुआ है, परंतु इसका मानक स्वरूप यह है कि सर्वप्रथम किसी स्थविर अथवा स्थविरा का गौतम बुद्ध से पूर्व के किसी बुद्ध से संपर्क हो जाता है। इस संपर्क के अंतर्गत संबंधित स्थविर अथवा स्थविरा अपनी विशुद्ध चेतना से उस पूर्व-बुद्ध के हितार्थ कोई सत्कर्म करते हैं। तदनंतर पूर्व-बुद्ध द्वारा यह भविष्यवाणी की जाती है कि ये किस प्रकार देवलोक अथवा मनुष्यलोक में संसरण करते हुए यश-लाभ करेंगे और बाद में किस आने वाले बुद्ध का धर्मोपदेश सुनेंगे। अंत में यह बतलाया जाता है कि यह भविष्यवाणी किस प्रकार सत्य सिद्ध होगी और किस प्रकार ये लोग अर्हत-पद प्राप्त करेंगे।

प्रत्येक स्थविर-स्थविरा ने यह उद्घोष किया है : 'मैंने चारों प्रतिसंभिदाओं, आठों विमोक्षों तथा छहों अभिज्ञाओं का साक्षात्कार कर लिया है। मैंने बुद्ध की शिक्षा को पूरा कर लिया है'।

इन अपदानों में वर्णित स्थविर-स्थविराएं अपने पूर्वजन्म में किसी पूर्व-बुद्ध के संपर्क में आने के समय अनिवार्यतः मनुष्य-योनि ग्रहण किये हुए नहीं थे, जैसा कि इनमें से कोई-कोई वानर, दानव, राक्षस, किन्नर अथवा किन्नरी, आदि भी थे।

इन्होंने तत्कालीन बुद्ध के हितार्थ जो भी गौरवपूर्ण कार्य किये थे, वे अत्यंत

भावविभोर होकर,मोद-भरे चित्त से और, यथासंभव, अपने हाथों से संपन्न किये थे। इसी कारणवश इन्हें आगे दुर्गति का मुँह नहीं देखना पड़ा, जैसा कि इनमें से कितनों ने ही इस बात की घोषणा भी की है : 'यह इस पुण्य-कर्म का ही फल है कि मुझे अपनी दुर्गति होने का भान नहीं होता है'।

कुछ गौरवपूर्ण कार्य इस प्रकार के रहे : भिक्षा-दान, वस्त्र-दान, धन-दान, दीप-दान, धूप-दान, मंच-दान, चौकी का दान, सेतु-दान, नई फसल का दान, चीवर सीने के लिए सुइयों का दान, पानी का मटका भर कर देना, नदी पार कराना, महल पर चढ़ने के लिए सीढ़ी बनाना, बोधि-वृक्ष के इर्द-गिर्द मुंडेर बनाना, इत्यादि।

कुछेक भविष्यवाणियां

* सुरुचि नाम के तपस्वी के लिए अनोमदस्सी भगवान ने भविष्यवाणी की कि यह अपने अंतिम जीवन में सारिया नाम की ब्राह्मणी की कोख से पैदा होकर सारिपुत्त नाम वाला होकर पैनी प्रज्ञा वाला होगा। यह उस समय ओक्काक (इक्ष्वाकु) कुल में उत्पन्न हुए गौतम गोत्र वाले शास्ता का स्वकीय, धर्म-निर्मित, धर्म-दायाद और उनका अग्रश्रावक होगा। यह अपने शास्ता द्वारा प्रवर्तित धर्मचक्र का अनुप्रवर्तन करेगा। (सारिपुत्तत्थेरअपदान)

* कोसिय नाम के जटाधारी के लिए पदुमुत्तर भगवान ने भविष्यवाणी की कि यह ओक्काक कुलोत्पन्न गौतम के शासनकाल में प्रव्रज्या प्राप्त कर उनका सुभूति नाम का श्रावक होगा। (सुभूतित्थेरअपदान)

* अनोम नामक तापस के लिए पियदस्सी भगवान ने भविष्यवाणी की कि चक्षुमान गौतम बुद्ध के शासन-काल में यह अभिरमण करता हुआ, उनके धर्म को सुन कर, अपने दुःखों का विनाश कर, सारे आस्रवों का परिज्ञान कर, अनास्रव होकर निर्वाण-लाभ करेगा। (हेमकत्थेरअपदान)

* हंसवती नगर के श्रेष्ठी कुलों में उत्पन्न हुई दो महिलाओं के लिए पदुमुत्तर भगवान ने पृथक-पृथक भविष्यवाणी की कि ये गौतम बुद्ध के शासन-काल में उनकी स्वकीय, धर्म-निर्मित, धर्म-दायाद शिष्याएं होंगी, जिनमें से एक का नाम होगा खेमा और दूसरी का पटाचारा। (खेमाथेरीअपदान तथा पटाचाराथेरीअपदान)

जन्म-मरण की शृंखला में अपना अंतिम जीवन बिताते हुए कुछेक स्थविरों-स्थविराओं के उद्घोष इस प्रकार के हैं

* शील, समाधि, प्रज्ञा और उत्कृष्ट विमुक्ति – इनमें ज्ञान जगा कर मैं सुखपूर्वक विहरता हूं। (पिलिन्दवच्छ)

* मैं एकांत-प्रेमी, शांत और आसक्ति-रहित हूं। मैं सारे आस्रवों का परिज्ञान कर, आस्रव-रहित होकर विहरता हूं। (गिरिमानन्द)

* मेरे राग, द्वेष, मोह, मान और म्रक्ष ध्वस्त हो गये हैं। मैं सारे आस्रवों का परिज्ञान कर, आस्रव-रहित होकर विहरता हूं। (काळुदायी)

* यह मेरा सबसे पिछला, अंतिम भव है। जय और पराजय को त्याग कर मैंने अविचल स्थान प्राप्त कर लिया है। (ओपवय्ह)

* मेरे पाप भस्म हो गए हैं, सारे भव जड़ से उखड़ गये हैं। जैसे हाथी बंधन तोड़ कर स्वतंत्र विचरण करता है, वैसे ही मैं भी आस्रव-रहित होकर विहार करता हूं। (सारिपुत्त)

* (माता की) कोख से निकलता हुआ मैं स्मृतिमान और संप्रज्ञानी था। मैं जन्म से पांच वर्ष का हूं और अर्हत-पद प्राप्त किये हुए हूं। (पदुम)

* स्कंधों को अनित्य, दुःख तथा अनात्म जान कर, सारे आस्रवों को परे फेंक कर, मैंने अर्हत-पद प्राप्त कर लिया है। (सोणा)

* जिस प्रयोजन के लिए मैं घर से बेघर हो प्रव्रजित हुई थी, मेरा वह प्रयोजन कि मेरे सारे संयोजनों का क्षय हो जाय, वह पूरा हो गया है। (उप्पलवण्णा)

* मैं ऋद्धियों की स्वामिनी हूं, दिव्य श्रोत्र प्राप्त किये हुए हूं और दूसरों के चित्त को जान लेती हूं। मैं शास्ता की शिक्षा पर चलती हूं। मैं पूर्वजन्मों को जानती हूं। मैंने दिव्य चक्षु विशुद्ध कर लिए हैं। मैं सारे आस्रवों को परे फेंक कर विशुद्ध एवं नितांत निर्मल हूं। (किसागोतमी)

☸

बुद्धवंस

'बुद्धवंस' में गौतम बुद्ध और उनके पूर्ववर्ती चौबीस अन्य बुद्धों की जीवनियों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें कुल एक सहस्र इकहत्तर गाथाएं हैं, जो उनतीस परिच्छेदों में विभक्त हैं।

इन परिच्छेदों में प्रतिपादित विषय-वस्तु का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है

(१) रतनचङ्कमनकण्ड –सहम्पति ब्रह्मा की याचना पर लोगों पर अनुकंपा कर उन्हें धर्मोपदेश देने से पूर्व गौतम बुद्ध ने अपना उत्कृष्ट बुद्ध-बल प्रकट किया। उन्होंने आकाश में रत्न-खचित चंक्रमण-भूमि का निर्माण किया, जिसे देखकर सभी लोक धातुओं के प्राणी विस्मित एवं गद्गद हो गये। उस समय सारिपुत्त ने उनसे पूछा कि सम्यक संबुद्ध बनने के लिए आपका संकल्प कैसा था, आपने उत्तम बोधि प्राप्त करने की कामना कब की और पारमियों तथा उप-पारमियों को कैसे पूरा किया।

(२) सुमेधपत्थनाकथा –भगवान ने बतलाया कि चार असंख्य और एक लाख कल्पपूर्व अमरवती नामक नगर में मैं सुसंपन्न, ज्ञानवान, पारमि-प्राप्त सुमेध नाम का ब्राह्मण था। मैंने एक बार एकांत में बैठ कर चिंतन किया कि संसार में बार-बार जन्म लेना दुःख है। इससे मुक्ति पाने का मार्ग अवश्य होगा, मैं उसकी खोज करूंगा : 'गूह से लिपटा हुआ व्यक्ति भरे हुए तालाब को देखकर भी उसकी खोज न करे, तो यह तालाब का दोष नहीं माना जा सकता।' यह सोच, मैं अपनी सारी संपत्ति दूसरों को देकर हिमालय के एक निकटवर्ती पर्वत पर जाकर रहने लगा और अपने परिश्रम के बल-बूते पर अनेक अभिज्ञाओं का लाभी हुआ।

एक बार मैंने किसी स्थान पर तत्कालीन सम्यक संबुद्ध दीपङ्कर भगवान के स्वागत के लिए लोगों को रास्ता ठीक करते हुए देखा। 'बुद्ध' के आगमन की बात जानकर मेरे मन में प्रीति का संचार होने लगा और मैंने भी उस मार्ग का एक खंड ठीक करने के लिए अपने जिम्मे ले लिया। परंतु मेरा कार्य पूरा होने से पहले ही अपने क्षीणास्रव शिष्यों के साथ भगवान वहां पर आ पहुँचे।

यह देख, मैंने अपने लंबे बाल खोल दिये और वल्कल-चीर तथा कंथा को

कीचड़ पर बिछा कर औंधा लेट गया जिससे बुद्ध अपने शिष्यों सहित मेरे ऊपर से लांघ जायें और उन्हें कीचड़ में पांव न रखना पड़े। मुझे लगता था कि ऐसा करना मेरे हित में ही होगा।

तभी मुझमें यह विचार कौंधा कि यदि मैं चाहूं तो आज ही अपने सारे पाप जला सकता हूं। परंतु मुझ अकेले द्वारा धर्म का साक्षात्कार कर भवसागर को तर जाने से क्या लाभ होगा? मुझे तो सर्वज्ञता प्राप्त कर देवों सहित सभी के तैर जाने में सहायक बनना चाहिए।

तभी मेरे सिर के पास खड़े होकर लोकों के जानकार दीपङ्कर भगवान ने कहा: 'देखो इस कठोर तप करने वाले जटाधारी तापस को! आज से अपरिमित कल्पों के पश्चात यह संसार में बुद्ध होगा।' इसके अतिरिक्त, उन्होंने मेरे वर्तमान जीवन को लेकर भी कई प्रकार की भविष्यवाणी की।

मेरे कर्मों का प्रकीर्तन कर अपने शिष्यों सहित दीपङ्कर भगवान के चले जाने के पश्चात मैं उठ खड़ा हुआ और वहीं पालथी मार कर बैठ गया। तभी दस सहस्र लोकों के निवासी महानाद करते हुए कहने लगे : 'यह निश्चय ही बुद्ध होगा!' उस समय शुभ लक्षण और अनेक प्रकार के चमत्कार भी दिखलाई पड़ने लगे।

इस सारे परिप्रेक्ष्य में, विशेषकर यह मानते हुए कि बुद्धों की वाणी कभी निष्फल नहीं जाती, मुझे विश्वास हो गया कि मैं बुद्ध बनूंगा। तब गहन चिंतन के फलस्वरूप मुझे लगा कि बोधि प्राप्त करने के लिए दस पारमियों को पूरा करना आवश्यक है, जो हैं – दान, शील, नैष्क्रम्य, प्रज्ञा, वीर्य, क्षान्ति, सत्य, अधिष्ठान, मैत्री तथा उपेक्षा। तभी धर्म के प्रताप से दस सहस्र लोक कंपायमान हो उठे।

(३-२६) बुद्धवंस – इन परिच्छेदों में निम्नांकित चौबीस बुद्धों की जीवनियों पर प्रकाश डाला गया है

दीपङ्कर, कोण्डञ्ञ, मङ्गल, सुमन, रेवत, सोभित, अनोमदस्सी, पदुम, नारद, पदुमुत्तर, सुमेध, सुजात, पियदस्सी, अत्थदस्सी, धम्मदस्सी, सिद्धत्थ, तिस्स, फुस्स, विपस्सी, सिखी, वेस्सभू, ककुसन्ध, कोणागमन, कस्सप।

प्रत्येक बुद्ध के बारे में जिन तथ्यों की जानकारी दी गयी है वे, प्रायःकर, हैं:

* कल्प
* उनके काल के तीन अभिसमय
* उनके श्रावकों के तीन सन्निपात
* तत्कालीन बोधिसत्व का परिचय, और उसके द्वारा बुद्ध के लिए किया गया कुशल कर्म।
* बोधिसत्व के भविष्य में 'बुद्ध' बनने की घोषणा (आवश्यक विवरण सहित)
* बुद्ध के नगर, पिता तथा माता के नाम
* उनके गृहस्थ जीवन की अवधि
* उनके निवास के तीन महलों के नाम
* महलों की अलंकृत नारियों की संख्या
* बुद्ध की पत्नी और पुत्र के नाम
* अभिनिष्क्रमण का साधन
* बोधि-प्राप्ति के लिए किये गये प्रधान (परिश्रम) की अवधि
* (तदनंतर) धर्मचक्र प्रवर्त्तन
* अग्र-श्रावकों के नाम
* उपस्थाक का नाम
* अग्र-श्राविकाओं के नाम
* बोधिवृक्ष का नाम
* अग्र-उपासकों के नाम
* अग्र-उपासिकाओं के नाम
* काया-प्रमाण
* रश्मियां
* आयु-प्रमाण
* परिनिर्वाण का स्थान

अनेक बुद्धों के परिनिर्वाण का उल्लेख करने के पश्चात इस सच्चाई का प्रख्यापन किया गया है : 'ननु रित्ता सब्बसङ्खारा' (सचमुच, सभी संस्कार अनित्य हैं!)

(२७) गोतमबुद्धवंसो – इसमें गौतम बुद्ध की जीवनी से संबंधित निम्नांकित तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है

शाक्यकुलीन। प्रधान (परिश्रम) द्वारा उत्तम संबोधि की प्राप्ति। ब्रह्मा की याचना पर धर्मचक्र प्रवर्त्तन। तीन अभिसमय (पहला अठारह करोड़ का, दूसरा वा तीसरा अगण्य)। एक ही सन्निपात (१,२५० भिक्षुओं का)। नगर : कपिलवत्थु। पिता : राजा सुद्धोदन। माता : मायादेवी। गृहस्थ-जीवन : २९ वर्ष। तीन उत्तम प्रासाद : रम्म, सुरम्म, सुभक। अलंकृत नारियां : ४०,०००। पत्नी : भद्दकच्चना। पुत्र : राहुल। चार निमित्तों को देख, अश्व-यान द्वारा अभिनिष्क्रमण। संबोधि प्राप्त करने के लिए दुष्कर साधना करने का समय : छः वर्ष। धर्मचक्र प्रवर्त्तन का स्थान : बाराणसी के पास इसिपतन। अग्र-श्रावक : कोलित तथा उपतिस्स। उपस्थाक : आनन्द। अग्र-श्राविकाएं : खेमा तथा उप्पलवण्णा। अग्र-उपासक : चित्त तथा हत्थाळवक । अग्र-उपासिकाएं : नन्दमाता तथा उत्तरा। संबोधि प्राप्त करने का स्थल : अश्वत्थ-मूल। व्याम-प्रभा : सोलह हाथ ऊंची। वर्तमान समय में मनुष्य का जीवन-काल : सौ वर्ष।

अंत में भगवान ने व्यक्त किया है कि मैं भी शीघ्र ही श्रावक-संघ सहित परिनिवृत्त हो जाऊंगा, जैसे इंधन समाप्त हो जाने पर अग्नि निर्वापित हो जाती है।

(२८) बुद्धपकिण्णककण्ड इसमें भगवान गौतम बुद्ध ने बुद्धों की उत्पत्ति के क्रम और उनके बीच के अंतराल पर प्रकाश डाला है और यह भी बतलाया है कि किन-किन कल्पों में एक से अधिक बुद्धों का प्रादुर्भाव हुआ था । वर्तमान कल्प (भद्रकल्प) में पांच बुद्ध होने हैं, जिनमें से ककुसन्ध, कोणागमन तथा कस्सप – ये तीन हो चुके हैं, अभी मैं बुद्ध हूं ही और आगे चल कर होंगे – मेत्तेय्य।

(२९) धातुभाजनीयकथा – इसमें कुसिनार में भगवान गौतम बुद्ध के परिनिर्वाण के उपरांत उनकी धातुओं के विभाजन का विवरण अंकित है।

चरियापिटक

'चरियापिटक' में गौतम बुद्ध के पूर्वजन्मों की पैंतीस चर्याओं का वर्णन है, जिनमें यह दर्शाया गया है कि उन्होंने किस प्रकार नाना पारमियों को पूरा किया था। दस पारमियों में से यहां केवल सात का ही उल्लेख है : दान, शील, नैष्क्रम्य, अधिष्ठान, सत्य, मैत्री तथा उपेक्षा।

ये चर्याएं तीन सौ छप्पन गाथाओं में निबद्ध हैं, जिन्हें भगवान ने स्वयं कहा है। इनका विभाजन तीन वर्गों में है।

इस ग्रंथ में प्रतिपादित विषय-वस्तु का, वर्ग-वार, संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है

(१) अकित्ति वर्ग (चरिया – अकित्ति, सङ्ख, कुरुराज, महासुदस्सन, महागोविन्द, निमिराज, चन्दकुमार, सिविराज, वेस्सन्तर, ससपण्डित।)

इन सभी चर्याओं का संबंध 'दान' पारमी से है। इनमें वर्णित महादान किसी भी व्यक्ति में दान के साथ-साथ वैराग्य की भावना जगाने के लिए भी अपूर्व प्रेरणा देते हैं।

उदाहरणतया:

* भगवान कहते हैं कि महासुदस्सन नामक चक्रवर्ती राजा के रूप में मैं दिन में तीन बार स्थान-स्थान पर घोषणा करवाता था कि कौन क्या चाहता है? किसकी क्या कामना है? किसे क्या धन दिया जाय? कौन भूखा है ? कौन प्यासा? किसे माला चाहिए? किसे विलेपन? कौन विवस्त्र रंगीन वस्त्र पहनेगा? कौन राहगीर छाता लेगा? कौन सुंदर, मुलायम जूते? याचकों को धन देने की व्यवस्था की गयी थी – दस स्थानों पर नहीं, न सौ स्थानों पर, बल्कि अनेक-सौ स्थानों पर। प्रयोजन? बदले में कुछ पाने के लिए नहीं, बल्कि अनासक्त रहकर संबोधि प्राप्त करने के लिए।

* मैंने सिवि नामक क्षत्रिय राजा के रूप में राज्य करते हुए अंधे याचक का रूप धारण कर आये हुए देवराट इंद्र (सक्क) की याचना पर अपनी दोनों आंखें निकलवाकर उसको भेंट कर दीं। मैंने ऐसा इसलिए नहीं किया कि मुझे

आंखें अच्छी नहीं लगती थीं, या मैं अपने आप को अच्छा नहीं लगता था, बल्कि इसलिए कि मुझे बुद्धत्व अच्छा लगता था।

* वेस्सन्तर राजा के रूप में राज्य से निकाल दिये जाने के पश्चात मैंने याचकों की मांग पर उन्हें अपने दोनों बच्चों और स्त्री को प्रसन्नचित्त से दानस्वरूप दे दिया। मैंने ऐसा इसलिए नहीं किया कि मुझे ये अप्रिय थे, बल्कि इसलिए कि मुझे बुद्धत्व प्रिय था।

(२) हत्थिनाग वर्ग (चरिया – मातुपोसक, भूरिदत्त, चम्पेय्यनाग, चूळबोधि, महिंसराज, रुरुराज, मातङ्ग, धम्मदेवपुत्त, अलीनसत्तु, सङ्खपाल।)

इन सभी चर्याओं का संबंध 'शील' पारमी से है।

इसके कतिपय उदाहरण हैं:

* उत्कृष्ट वन में अद्वितीय गुणों से संपन्न मातृपोषक हस्ती के रूप में रहते हुए मुझे पकड़ने के लिए राजा ने अपने महावत को भेजा। उस समय मैं पद्म-सरोवर में अपनी माता के निर्वाह के लिए कमल-नाल उखाड़ रहा था। तभी उसने मुझे 'आओ, पुत्र!' कहकर सूंड़ से पकड़ लिया। उस समय मेरे शरीर में आजकल के हजार हाथियों के बराबर बल था, और यदि मैं मुझे पकड़ने वालों पर क्रोध करता तो मैं राज्य भर के मनुष्यों को नष्ट कर डालता। पर मैंने अपने शील की रक्षा करते हुए, अपनी शील पारमी को पूरा करने के लिए अपने चित्त में कोई विकार नहीं जगने दिया।

* एक बार जब मैं विशालकाय, बलवान और भयावह जंगली भैंसा था, तब मेरे खड़े रहते और सोते समय एक अशिष्ट, पापी और चंचल बंदर बार-बार मेरे कंधे, ललाट और भौंह पर पेशाब और पाखाना किया करता था। परंतु मैंने अपना शील-भंग होने के भय से उस पर क्रोध नहीं किया।

* मैं पञ्चाल राष्ट्र के राजा जयद्दिस का श्रुतधर्मा, परिजनों की रक्षा करने वाला अलीनसत्तु नाम का पुत्र था। आखेट के लिए गये हुए मेरे पिता को एक नरभक्षी यक्ष ने पकड़ लिया और कहा –'तू मेरा भक्ष्य है, यहां से मत सरक!' परंतु उसके समक्ष वापस आने की प्रतिज्ञा कर मेरे पिता घर लौट आये। जब मेरे पिता ने मुझे राज्य सौंप कर यक्ष के पास लौटना चाहा, तब मैंने उन्हें यक्ष के पास जाने से रोक दिया और उनके स्थान पर मैं स्वयं निहत्था होकर उसके पास चला गया। वहां मैंने उसे कहा – 'हे पितामह! महाग्नि जलाओ, मैं उसमें

कूद दूंगा। फिर उचित समय जान मुझे खा लेना।' इस प्रकार मैंने अपने शील-व्रत के कारण अपने जीवन की रक्षा नहीं की, और मैंने उस यक्ष की जीव-हिंसा करने की प्रवृत्ति भी छुड़वा दी।

(३) युधञ्जय वर्ग –इसकी चर्याओं का संबंध नीचे दर्शायी गयी पारमियों से है

चरियापारमी

युधञ्जय, सोमनस्स, अयोघर, भीस, सोणपण्डित। – नैष्क्रम्य

तेमिय – अधिष्ठान

कपिराज, सच्चतापस, वट्टपोतक, मच्छराज, कण्हदीपायन, सुतसोम। –सत्य

सुवण्णसाम, एकराज। – मैत्री

महालोमहंस। – उपेक्षा

इनके कुछ उदाहरण निम्न प्रकार से हैं:

* 'नैष्क्रम्य' पारमी : जब मैं अपरिमित यश वाला युधञ्जय नाम का राजपुत्र था, तब संवेग को प्राप्त हो राजा, रानी, निगम और राष्ट्र –सभी के विलाप करते हुए मैं अपेक्षारहित होकर प्रव्रजित हो गया। ऐसा नहीं था कि मुझे माता-पिता प्रिय नहीं थे, अथवा महा-यश प्रिय नहीं था, पर बुद्धत्व प्रिय होने के कारण मैंने राज्य को त्याग दिया। (युधञ्जयचरिया)

* 'अधिष्ठान' पारमी : बुद्धत्व प्राप्त करने के उद्देश्य से मैं सोलह वर्षों तक गूंगा, बहरा और पंगु बना रहा। अधिष्ठान में मेरा कोई सानी नहीं है। (तेमियचरिया)

* 'सत्य' पारमी : मैंने अनेक बार सत्य-वचनों का आश्रय लेकर सत्य-क्रियाएं कीं और उनसे अभीष्ट फल प्राप्त किये। उदाहरणतया, ग्रीष्म-काल में तालाब में पानी कम हो जाने से कौवे, गीध, बगुले, चीलें और बाज मछलियों के पास बैठ कर उन्हें रात-दिन खाने लगे। तब मैंने यह सत्य-क्रिया की: 'जब से मैं अपना स्मरण करता हूं, जबसे मैंने होश संभाला है, मुझे जान बूझ कर एक भी प्राणी की हिंसा करना स्मरण नहीं है। मेरे इस सत्य-वचन से मेघ बरसे।' मेरी इस सत्य-क्रिया के साथ ही गर्जना करते हुए मेघ बरसा और उसने ऊंची-नीची धरती

को जल से आप्लावित कर दिया। सत्य में मेरा कोई सानी नहीं है। (मच्छराजचरिया)

* 'मैत्री' पारमी : एक समय मैं सक्क (शक्र) द्वारा निर्मित वन में सिंहों, व्याघ्रों, चीतों, रीछों, भैंसों, चितकबरे मृगों और सूअरों से घिरा रहता था। उस समय न तो कोई मुझसे डरता था और न ही मैं किसी से डरता था। उस समय मैत्री-बल के सहारे ही मैं वन में रमण किया करता था। (सुवण्णसामचरिया)

* 'उपेक्षा' पारमी : मैं श्मशान में मुर्दे की हड्डी पर सिर रख कर सोता था। कुछ लोग बार-बार वहां आकर बहुत से (विकराल) रूप दिखलाते थे, जबकि अन्य लोग गंध, माला, तरह-तरह का भोजन और उपहार लाते थे। परंतु जो कोई मुझे सुख देते अथवा दुःख, मैं सबके लिए समान होता था। मुझ में न दया उपजती थी, न क्रोध।सुख और दुःख, तथा यश और अपयश, सबमें मैं तुला के समान रहता था। यह है मेरी 'उपेक्षा' पारमी!

भगवान ने इस ग्रंथ के आरंभ में स्पष्ट किया है कि भले ही चार असंख्य एक लाख कल्पों के मध्य की सभी चर्याएं बुद्धत्व की ओर ले जाने वाली हैं, परंतु मैं बीते हुए कल्पों की चर्याओं को एक ओर रख, केवल इसी कल्प (अर्थात भद्रकल्प) की चर्याओं को कहता हूं।

☸

जातक

प्रस्तुत ग्रंथ में भगवान बुद्ध के पूर्वजन्मों से संबंधित गाथाओं का संकलन है। परंतु मात्र इन गाथाओं के आधार पर पूर्वजन्मों के घटनाक्रम को समझ पाना कठिन है। इसे भली प्रकार समझने के लिए इस ग्रंथ की अर्थकथा (जातकट्ठकथा) का आश्रय लेना आवश्यक रहता है। ऐसी परिस्थिति में सर्वप्रथम 'जातकट्ठकथा' का ही संक्षिप्त विवेचन किया जा रहा है।

जातक-अट्ठकथा

'जातक-अट्ठकथा' में इसके मुख्य शीर्षकों को दृष्टिगत करते हुए पांच सौ सैंतालीस कथाएं हैं। इनमें यह दर्शाया गया है कि भगवान बुद्ध ने 'बुद्धत्व' की प्राप्ति के लिए दसों पारमिताओं को पूरा करने के लिए कैसे-कैसे प्रयास किये।

प्रत्येक कथा पांच भागों में विभक्त है

(१) पच्चुप्पन्नवत्थु

(२) अतीतवत्थु

(३) गाथा

(४) वेय्याकरण

(५) समोधान

'पच्चुप्पन्नवत्थु' से तात्पर्य है प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) कथावस्तु। इसके अंतर्गत भगवान के जीवनकाल की किसी घटनाविशेष का उल्लेख है। 'अतीतवत्थु' के अंतर्गत उक्त घटना के प्रसंगवश भगवान द्वारा अपने पूर्वजन्म की किसी घटना पर प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक कथा के अंतर्गत एक या अनेक गाथाएं हैं। इन गाथाओं का, प्रायःकर, शब्दशः एवं विस्तृत अर्थ भी किया गया है, जो 'वेय्याकरण' है। अंत में 'समोधान' है, जिसमें अतीतवत्थु के पात्रों का भगवान के जीवनकाल के पात्रों के साथ संबंध दिखलाया गया है ।

प्रस्तुत ग्रंथ में जातक कथाओं की गाथाओं, और कहीं-कहीं समोधान को भी, अंतर्निविष्ट किया गया है। शेष सारी सामग्री 'जातक-अट्ठकथा' में ही निहित

रहती है। इससे स्पष्ट होगा कि प्रस्तुत ग्रंथ की गाथाओं को समझने के लिए 'जातक-अट्ठकथा' का आश्रय लेना कितना आवश्यक है।

उदाहरणतया, 'वट्टक जातक' (१.१.३५) के अंतर्गत एक ही गाथा है

'पंख हैं, पर उनसे उड़ा नहीं जाता; पैर हैं, पर इनसे चला नहीं जाता । मेरे माता-पिता मुझे छोड़ कर चले गये हैं। हे अग्नि! पीछे हट जा।'

इससे यह नहीं पता चलता कि यह बात किसने और किस प्रसंग में कही है। 'जातक-अट्ठकथा' के अनुशीलन से विदित होता है कि जंगल में आग लग जाने के समय एक सद्यःजात बटेर के बच्चे ने इस प्रकार की सत्यक्रिया की थी, जबकि न तो उसमें अपने पंखों से उड़ने की सामर्थ्य थी और न पैरों से चलने की, और जबकि उसके माता-पिता भी उसे पेड़ के घोंसले में अकेला छोड़कर चले गये थे। समोधान के अंतर्गत बतलाया गया है कि उस समय के बटेरराज भगवान स्वयं ही थे।

प्रस्तुत ग्रंथ

प्रस्तुत ग्रंथ में 'जातक-अट्ठकथा' की जिन गाथाओं को संगृहीत किया गया है उन्हें 'अभिसंबुद्ध गाथा', अर्थात बुद्ध द्वारा उदीरित गाथाएं, भी कहा जाता है । कथा-वार गाथाओं के संग्रह को 'जातक' कहा गया है। ऐसे जातकों की कुल संख्या पांच सौ सैंतालीस है, और गाथाओं की छह हजार छह सौ बावन ।

जातकों का विभाजन बाईस 'निपातों' में किया गया है। इनमें से पहले तेरह निपात १,२,३ से लेकर १३ तक की संख्या से अभिहित किये गये है; चौदहवां निपात 'पकिण्णक' (प्रकीर्णक) कहा गया है; पंद्रहवें से इक्कीसवें निपात २०,३०,४० के क्रम से ८० तक की संख्या से निर्दिष्ट किये गये हैं और बाईसवें निपात को 'महानिपात' संज्ञा दी गयी है।

निपात सं. १ से ७ में जातकों की संख्या १५० से २०-२१ तक, घटते क्रम से है; निपात सं. ८ से १६ में ९ से १६ तक; निपात सं. १७ से २१ में २ से ५ तक; और निपात सं. २२ में दस। पहले निपात से लेकर अंतिम निपात तक गाथाओं की संख्या में निरंतर वृद्धि होना पाया जाता है। उदाहरणतया, प्रथम निपात के जातकों में गाथाओं की औसत संख्या एक है, जबकि अंतिम निपात में यह संख्या दो सौ चवालीस है। अंतिम निपात का नाम 'महानिपात' सर्वथा

सार्थक है, जैसा कि इसमें गाथाओं की संख्या २,४४० है जो पूरे ग्रंथ की गाथाओं के एक-तिहाई से भी कहीं अधिक है।

प्रस्तुत ग्रंथ बुद्ध-वचन के अंतर्गत आता है और 'तिपिटक' का अंगभूत है । यहां पर समूची 'जातक-अट्ठकथा' को आधार बना कर इस ग्रंथ का सार प्रस्तुत करने का मंतव्य नहीं है। परंतु इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि बालक-बालिकाओं का कथाओं के प्रति स्वाभाविक आकर्षण होता है, उनके लिए प्रेरणास्पद कुछेक जातक-कथाओं का संकेतमात्र नीचे किया जा रहा है।

बालोपयोगी जातक कथाएं

○ मत्तकभत्त जातक (जातक सं. १८) – वध के लिए लाया जाता हुआ भेड़ा हंसा भी, और रोया भी। सो क्यों?

○ कुरुंगमिग जातक (२१) – वृक्ष से फलों को सीधा-सीधा नीचे गिरते न देख कुरंग मृग को आशंका हुई कि वृक्ष ने अपना स्वभाव पलट लिया है। अतः वह वहां से चल दिया और शिकारी के चंगुल से बच निकला।

○ अभिण्ह जातक (२७) – कुत्ते और हाथी का परस्पर इतना स्नेह हो गया कि कुत्ते का साथ छूटने पर हाथी ने खाना-पीना छोड़ दिया।

○ सम्मोदमान जातक (३३) – एकमत बटेरों का चिडीमार कुछ न बिगाड़ सका, परंतु जब उनमें फूट पड़ गयी तब वे सभी उसके जाल में फँस गये।

○ बक जातक (३८) – बगुले ने मछलियों को धोखा देकर एक-एक को ले जाकर बहुतों को मार खाया। अंत में वह एक केकड़े के हाथों मारा गया।

○ नामसिद्धि जातक (९७) – 'पापक' नाम का विद्यार्थी एक अच्छे नाम की तलाश में बहुत घूमा। अंत में यह समझ आने पर कि नाम तो केवल बुलाने के लिए होता है, वह लौट आया।

○ अनुसासिक जातक (११५) – दूसरों को उपदेश देने वाली लोभी चिड़िया स्वयं पहिये के नीचे आकर मर गयी।

○ बिळारवत जातक (१२८) – सियार धर्म का ढोंग रच कर चूहों को खाता था। बोधिसत्त्व ने इसे 'बिडालव्रत' की संज्ञा दी।

○ एकपण्ण जातक (१४९) – बोधिसत्त्व ने नीम के पौधे के दो पत्तों की कडुवाहट चखा कर राजकुमार का दुष्ट स्वभाव दूर किया।

○ राजोवाद जातक (१५१) – मल्लिका राजा का सिद्धांत था 'जैसे को तैसा', काशी-नरेश का था 'बुराई को भलाई से जीतना'। इन दोनों राजाओं में काशी-नरेश ही बड़ा माना गया।

○ सुसुमार जातक (२०८) – मगरमच्छ अपनी स्त्री के कहने से वानर का कलेजा लेना चाहता था, पर वानर अपनी चतुराई से बच निकला।

○ कच्छप जातक (२१५) – दो हंस-बच्चे एक लकड़ी को कछुए के मुँह में दे, और उसके दोनों सिरों को अपने मुँह में ले, आकाश-मार्ग से जा रहे थे । कछुए के चुप न रहने पर उसने नीचे गिर अपनी जान गंवायी।

○ तिलमुट्ठि जातक (२५२) – आचार्य ने बुढ़िया के तिलों की मुट्ठी खाने वाले राजकुमार-शिष्य को पीटा। राजकुमार ने बड़े होने पर आचार्य को जान से मरवाना चाहा। परंतु आचार्य ने ऐसा न करने के लिए सद्बुद्धि दी ।

○ दूत जातक (२६०) – किसी ने अपने आप को 'पेट का दूत' जना कर स्वादिष्ट भोजन प्राप्त किया।

○ पदुम जातक (२६१) – नकटे ने झूठी प्रशंसा करने वालों की अवहेलना कर सच्ची बात कहने वाले को तालाब के कमल दिये।

○ आरामदूसक जातक (२६८) – वानरों ने पौधों को उखाड़ कर उनकी जड़ें नाप-नाप कर उन्हें पानी से सींचा, और इस प्रकार सारी बगिया उजाड़ दी।

○ कुटिदूसक जातक (३२१) – वानर ने बया के सदुपदेश से चिढ़ कर उसके घोंसले को नोच डाला।

○ दद्दभ जातक (३२२) – 'पृथ्वी पलट रही है – इस आशंका से खरगोश के भागने पर दूसरे अंधविश्वासी जानवर भी उसका अनुकरण कर अंधाधुंध भागने लगे। अंत में सिंह ने उन्हें रोका और खरगोश की भ्रांति को दूर किया।

○ कक्कारु जातक (३२६) – पुरोहित द्वारा झूठ बोल कर देवताओं से दिव्य-कक्कारु पुष्प प्राप्त किये गये, जो उसे भारी पड़े।

○ मिगालोप जातक (३८१) – पिता का कहना न मान बहुत ऊंची उड़ान भर मिगालोप नाम का गृद्ध-शावक झंझावत में फँस कर अपने प्राण गँवा बैठा ।

○ सिङ्गपुप्फ जातक (३९२) – देवकन्या ने एक ब्राह्मण को तालाब में उतर खिले हुए फूल को सूंघते हुए देख उसे 'गंध-चोर' कहकर उसकी भर्त्सना की।

○ वट्टक जातक (३९४) – स्निग्ध भोजन करने पर भी कौवे के दुबला होने और घास-तिनके खाने पर भी बटेर के मोटा होने के कारण पर प्रकाश ।

साधकोपयोगी जातक कथाएं

इसी प्रकार विपश्यी साधकों के लिए भी उपयोगी कुछेक जातक कथाओं का संकेत नीचे किया जा रहा है।

○ मखादेव जातक (९) – सिर का सफेद बाल देख कर राजा सिंहासन त्याग कर प्रव्रजित हो गया।

○ महासुदस्सन जातक (९५) – महासुदस्सन राजा द्वारा अपने मरण-काल के समय दिया गया अनित्यता का उपदेश।

○ सिङ्गाल जातक (१४८) – मांस का लोभी गीदड़ हाथी के गुदा-मार्ग से उसके पेट में प्रविष्ट होकर वहीं कैद हो गया। फिर यथा-तथा उसमें से बाहर निकल कर अत्यधिक संवेग को प्राप्त हुआ।

○ उपसाळ्हक जातक (१६६) – पृथ्वी में ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहां कोई न कोई जलाया न गया हो, अथवा जहां श्मशान न रहा हो।

○ सकुणग्घि जातक (१६८) – बटेर ने अपने गोचर स्थान पर रह कर बाज की भी जान ले ली। पैतृक प्रदेश में विचरण करने का उपदेश।

○ गिरिदत्त जातक (१८४) – शिक्षक के लंगड़ा होने से घोड़ा लंगड़ा कर चलने लगा; सही शिक्षक मिलने पर अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ गया।

○ गरहित जातक (२१९) – मनुष्यों की करनी – बंदर की दृष्टि में!

○ वच्छनख जातक (२३५) – गृहस्थ जीवन के दोष।

○ किंसुकोपमजातक (२४८) – सभी राजकुमारों ने 'किंसुक' को देखा, परंतु फिर भी मतैक्य नहीं। क्यों?

○ कुरुधम्म जातक (२७६) – कुरु-धर्म का परिचय।

○ वक जातक (३००) – भेड़िये का उपोसथ-व्रत।

○ खन्तीवादी जातक (३१३) –जिस राजा ने बोधिसत्त्व के हाथ-पांव तथा नाक-कान कटवा दिये, बोधिसत्त्व ने उसके भी चिरंजीव होने की कामना की।

○ मतरोदन जातक (३१७) –बड़े भाई की मृत्यु हो जाने पर बोधिसत्त्व ने रोना-पीटना निरर्थक बतलाया।

○ तित्तिर जातक (३१९) – पाप कब नहीं लगता – इसका स्पष्टीकरण ।

○ कोकिलजातक (३३१) –बोधिसत्त्व के उपदेश से राजा की वाचालता दूर हुई।

○ उरग जातक (३५४) –पुत्र सांप के डँसने से मर गया, पर कोई नहीं रोया – न पिता, न माता; न भार्या, न भगिनी, न दासी।

○ कोरण्डिय जातक (३५६) –हर किसी को, बिना मांग किए, शील ग्रहण करने के लिए आग्रह करने का अनौचित्य।

○ अट्ठसद्द जातक (४१८) –आठ प्रकार की आवाजों से संत्रस्त राजा के लिए इन आवाजों का स्पष्टीकरण।

○ महामङ्गल जातक (४५३) –विज्ञों द्वारा प्रशंसित, सुखकर, आठ प्रकार के सोत्थान (स्वस्तियां)।

○ युधञ्जय जातक (४६०) –ओस की बूंदों को देखकर वैराग्य की भावना जागृत हुई।

○ जनसन्ध जातक (४६८) –दस बातें, जिनके कारण बाद में पछताना पड़ता है। दूसरी दस बातें, जिनके कारण बाद में पछताना नहीं पड़ता है।

○ मित्तामित्त जातक (४७३) – मित्र और अमित्र के लक्षण।

○ सम्भव जातक (५१५) –सात वर्ष के बालक द्वारा 'अर्थ' और 'धर्म' पर प्रकाश।

○ वेस्सन्तर जातक (५४७) –वेस्सन्तर राजा के दान की रोमांचकारी अपूर्व कथा।

सुभाषित

विचाराधीन ग्रंथ की गाथाओं का स्वतंत्र रूप से अध्ययन करने पर इसमें

ढेर-सारे सुभाषित मिलते हैं। इनमें से कुछेक को उपयुक्त शीर्षकों के अंतर्गत नीचे निबद्ध किया गया है।

अति

– पंडित होना अच्छा है, अतिपंडित होना नहीं। (१.१.९८)

–जो मिल जाय उससे संतुष्ट रहना चाहिए, अति लोभ करना पाप है। (१.१.१३६)

अतीत-अनागत

–अतीत के बारे में सोच करना और अनागत के बारे में प्रलाप करना – इससे मूर्ख लोग काटे हुए हरे सरकंडे के समान सूख जाते हैं। (२.२२.९१)

असत्पुरुष-सत्पुरुष

–जैसे कृष्णपक्ष में चंद्रमा दिन प्रति दिन छोटा होता जाता है, वैसे ही होता है असत्पुरुषों से संसर्ग। (२.२१.४८४)

–जैसे शुक्ल पक्ष में चंद्रमा दिन प्रति दिन बड़ा होता जाता है, वैसे ही होता है सत्पुरुषों से संसर्ग। (२.२१.४८६)

–आकाश दूर तक फैला हुआ होता है, और पृथ्वी भी। कहते हैं समुद्र का पार भी दूर-दूर तक है। परंतु इनसे भी अधिक दूरी होती है असत्पुरुषों तथा सत्पुरुषों के धर्म में। (२.२१.४१४)

असत्यभाषण

–न तो कामकामी होकर, न भय के मारे और न द्वेष-वश प्रव्रजित लोग असत्यभाषण करते हैं। (२.१७.१४५)

आयु-क्षय

–खड़े रहने, बैठने, लेटने तथा चलने के समय की तो बात ही क्या, आंख खोलने और बंद करने के समय भी आयु का क्षय होता ही रहता है। (१.४.१११)

आर्य-अनार्य

– आर्य पुरुष आर्यपुरुष के काम आता है। (१.१४.४६)

– अनार्य पुरुष गोद में बैंठे सांप की तरह डँसता है। (२.२२.६५५)

आशा-निराशा

– पुरुष आशा लगाए रखे; बुद्धिमान कभी निराश न हो। (१.१.५१)

इच्छा-चक्र

–चार से आठ, आठ से सोलह, और सोलह से बत्तीस की इच्छा करने के कारण सिर पर घूमने वाला चक्र प्राप्त हुआ। इच्छा (लोभ) से ताड़ित मनुष्य के सिर पर यह चक्र घूमता रहता है। (१.१.१०४)

उद्योग

–आज ही उद्योग करना चाहिए, कौन जाने कल मरण हो जाय, क्योंकि उस बड़ी सेना वाले मृत्युराज के साथ हमारा कोई इकरार नहीं है (कि हम कब मरेंगे)। (२.२२.१६६)

एकता

–एकजुट होकर रहना सीखो, बुद्धों ने इसे सराहा है। मिल-जुल कर रहने में आनंद लेने वाला धर्मिष्ठ व्यक्ति योगक्षेम से वंचित नहीं होता। (१.१३.२६)

एकाकी विचरण

–समय बीतता जाता है, रातें निकलती जाती हैं, मैं भी संसार में सारी आसक्तियों को लांघ कर, शीतल हुई, अकेली विचरण करूंगी। (१.१५.३६२)

कच्चा-पक्का

–जो फलोंसे लदे महावृक्ष के फलको कच्चाही तोड़ लेता है, वह इसके रस को नहीं जानता और इसका बीज भी नष्ट हो जाता है। ऐसे ही जो महावृक्ष के समान राष्ट्र का अधर्म से शासन करता है, वह इसके रस को नहीं जानता और वह राष्ट्र भी नष्ट हो जाता है। (२.१८.१७२-१७३)

–जो फलोंसे लदे महावृक्ष के फलको पक जाने पर तोड़ता है, वह इसके रस को जानता है और इसका बीज भी नष्ट नहीं होता है। ऐसे ही जो महावृक्ष के समान राष्ट्र का धर्म से शासन करता है, वह इसके रस को जानता है और राष्ट्र भी नष्ट नहीं होता है। (२.१८.१७४-१७५)

कथनी-करनी

–जो करे वही कहे, जो न करे वह न कहे। न करते हुए केवल कहने वाले को बुधजन खूब पहचानते हैं। (१.४.७८)

कर्म

–असंख्य जन्म लेने पर भी कर्म पीछे-पीछे चलते हैं। कल्याणकारी हो या अनिष्टकारी, कर्म नष्ट नहीं होता है। (२.२२.१२८२)

–खूब पैनी तलवार, सुपायित खड्ग, छाती में घोंपी हुई बर्छी – कामभोग इनसे भी कहीं अधिक दु:खदायी होते हैं। (१.११.७०)

–जैसे कीचड़ में धँसा हुआ हाथी धरती को देख कर भी वहां नहीं जा पाता है, वैसे ही मैं भी कामभोगों की दलदल में धँसा हुआ भिक्षु के मार्ग पर नहीं जा रहा हूं। (१.१५.४५)

–सिक्कों की वर्षा होने पर भी कामभोगों में तृप्ति नहीं होती। कामवासनाएं

अल्प स्वाद वाली (अधिकांशतः) दुःखद ही होती हैं। यह जानकर बुद्धिमान व्यक्ति दैवी कामभोगों में भी अनुरक्त नहीं होता। सम्यक संबुद्ध का श्रावक तृष्णा के क्षय (निर्वाण) में ही अनुरक्त होता है। (१.३.२३-२४)

क्रोध

– क्रोध के वशीभूत मत हो। (१.२.८१)

– तात! क्रोध मत कर। क्रोध करना अच्छा नहीं होता। (१.६.८)

– बुद्धिमान लोग क्रोध से बलशाली नहीं होते। (१.१५.१९)

गुह्य अर्थ

– गुह्य अर्थ को प्रकट न करे, निधि के समान उसकी रक्षा करे। (१.२५.३३२)

चिंतन

–बिना सोची हुई बात हो जाती है, सोची हुई नहीं होती। स्त्री अथवा पुरुष के भोग चिंतन पर आश्रित नहीं होते। (१.१३.१३९)

जन्मों का क्षय

–मैंने निःसंदेह जन्मों के क्षय का अंत देख लिया है। अब मैं फिर गर्भ-गत नहीं होऊंगा। यह मेरा अंतिम गर्भ-शयन था। पुनर्जन्म के लिए मेरा संसार क्षीण हो चुका है। (१.८.१७)

तृष्णा

–अरी तृष्णे! मैंने तेरी जड़ को देख लिया है। तेरा उत्पाद इच्छाओं में होता है। तो मैं इच्छा ही नहीं करूंगा, जिससे तू अस्तित्व में ही नहीं आ पायगी। (१.८.३९)

त्राण

– अपने आप को बचा कर चलो। (१.९.५९)

दान

– सभी प्राणियों के लिए दान से बढ़ कर कोई सहारा नहीं है। (१.२२.१७११)

–थोड़ा होने पर थोड़ा दे, ठीक-ठीक होने पर ठीक-ठीक दे, और बहुत होने पर बहुत दे। दान न देना उचित नहीं है। (२.२१.१९३)

–जिनके राग, द्वेष और अज्ञान दूर हो गये हैं, वे क्षीणास्रव अरहंत हैं। उनको दिया गया दान बड़ा फलप्रद होता है। (१.१५.२३)

–घर में आग लग जाने पर जो बर्तन बाहर निकाल लिए जाते हैं, वही उस व्यक्ति के काम आते हैं, न कि जो वहां जल जाते हैं। इसी प्रकार संसार जरा और मृत्यु से जल रहा है, दान देकर इसमें से भी निकाल लो। दिया हुआ ही बचाया हुआ होता है। (१.८.६९-७०)

दुर्बुद्धि

–हे दुर्बुद्धि! जटाओं से तुझे क्या लाभ है, और मृगछाल ओढ़ने से क्या? अंदर से तू मैला है, और बाहर से धोता है। (१.१.१३८)

दुःख

–जो व्यक्ति, बिन-पूछे, असमय ही अपना दुःख प्रलापता रहता है, उसके शत्रु प्रसन्न होते हैं और हितचिंतक विषण्ण। (१.१३.५९)

देवता

–देवता मनुष्यों की तरह जीर्ण नहीं होते हैं, उनके शरीर पर झुर्रियां नहीं पड़ती हैं। आने वाले दिनों में उनका वर्ण दिव्यतर होता जाता है और भोगों में बढ़ोतरी होती रहती है। (१.११.४८)

धर्म

– निश्चय ही लोक में पहले धर्म प्रकट हुआ, और बाद में अधर्म। (१.१.२८)

– धर्म कीचड़-रहित तालाब है, और पाप पसीना-रूपी मैल। (१.६.९२)

–मैं जब धर्म की बात बोलता हूं, उस समय मुझे पाप स्पर्श नहीं करता है। (१.७.८०)

– धर्म ही ऋषियों की ध्वजा होती है। (२.२१.४९४)

–लोहे से सोना पीटा जाता है, सोने से लोहा नहीं। यदि अधर्म धर्म को जीत ले, तो लोहा सोने जैसा सुंदर हो जाय। (१.११.३१)

–हनन किये जाने पर धर्म मार डालता है, अहत रहने पर किसी को नहीं मारता। अतः धर्म का हनन मत करो, जिससे यही कहीं तुम्हें न मार डाले। (१.८.४५)

धर्माचरण

–निश्चय ही धर्म धर्माचरण करने वाले की रक्षा करता है। खूब अभ्यास किया गया धर्म सुख प्राप्त करता है। खूब अभ्यास किये गए धर्म का यह सुफल होता है कि धर्माचरण करने वाले की दुर्गति नहीं होती है। (१.१०.१०२)

नरक

–जैसे व्यापारियों की नाव बेहिसाब भर ही जाय, तो अधिक भार ले जाने के कारण समुद्र में डूब जाती है, वैसे ही थोड़े-थोड़े पाप का संचय करता हुआ मनुष्य भी बहुत भार ढोने के कारण नरक में धँस जाता है। (२.२२.१२४५-१२४६)

नारी

–जीवलोक में जो स्त्री समता का आचरण करनेवाली, मेधाविनी, शीलवती, ससुर को देवता मानने वाली एवं पतिव्रता होती है, उस सुमेधा, शुचिकर्मा, मानुषी नारी का दर्शन पाने के लिए अमानुष देव आते हैं। (१.१४.१२२-१२३)

नेता

–गौवों के (नदी) तैरने के समय यदि बैल टेढ़ा जाता है, तो नेता के टेढ़े जाने के कारणसभी गौवें भी टेढ़े जाने लगती हैं। इसी प्रकारजो मनुष्यों में श्रेष्ठ माना जाता है, यदि वही अधर्म करता है तो शेष प्रजा पहले से ही ऐसा करने लग जाती है। राजा के अधार्मिक होने पर सारा राष्ट्र दुःखी होता है। (१.४.१३३-१३४)

–गौओं के (नदी) तैरने के समय यदि बैल सीधा जाता है, तो नेता के सीधा जाने के कारण गौवें भी सीधी जाने लगती हैं। इसी प्रकार जो मनुष्यों में श्रेष्ठ माना जाता है, यदि वह धर्म का पालन करता है तो शेष प्रजा पहले से ही ऐसा करने लग जाती है। राजा के धार्मिक होने पर सारा राष्ट्र सुख पाता है। (१.४.१३५-१३६)

प्रज्ञावान

– प्रज्ञावान इस संसार में दुःख में भी सुख प्राप्त करता है। (२.१७.३३)

–कुशलजन प्रज्ञा को श्रेष्ठ बतलाते हैं, जैसे तारों में चंद्रमा। शील, वैभव और सज्जनों का धर्म – ये प्रज्ञावान के पीछे-पीछे चलते हैं। (२.१७.८१)

प्रमाद-अप्रमाद

–अप्रमाद अमृत (निर्वाण) का स्थान है, प्रमाद मृत्यु का। अप्रमत्त मरते नहीं हैं, और प्रमत्त तो मृत-सदृश ही होते हैं। (१.१६.३३२)

प्रशंसा-निंदा

–एक ही बात के लिए एक को प्रशंसा मिलती है, और दूसरे को निंदा। (१.१३.११४)

प्रसन्न-अप्रसन्न

– प्रसन्न व्यक्ति से ही मेल करे, अप्रसन्न से दूर रहे। (२.१८.१३१)

प्रिय-अप्रिय

– बहुत देर तक टिके रहने से प्रिय अप्रिय हो जाता है। (१.१३.३७)

–सुंदर वर्ण वाले, आकर्षक ,देखने में सुंदर, परुष वाणी बोलने वाले न तो इस लोक में प्रिय होते हैं, न परलोक में। जरा देखो इस काली, दुर्वर्ण, तिल के दागों वाली कोयल को, जो अपनी स्निग्ध वाणी के कारण बहुत से प्राणियों को प्रिय लगती है! (१.३.५५-५६)

पुरुष-स्त्री

– पुरुष की हितचिंतक स्त्री दुर्लभ होती है, और (ऐसे ही) स्त्री का हितचिंतक भर्तार भी। (१.१६.३३०)

–सब मामलों में पुरुष ही पंडित नहीं होता, किन्हीं-किन्हीं मामलों में स्त्री भी खूब चतुर होती है। (१.८.२२)

बीज-फल

– जो जैसा बीज बोता है, वह वैसा फल ले जाता है। (१.२.१४४)

भोजन

–(भोजन की) मात्रा को न जानने वाले डूब जाते हैं, इसकी मात्रा को जानने वाले नहीं। (१.३.१५)

– पक्षी के लिए मनुष्यों के भोजन सुभोज्य नहीं होते। (१.५.१४०)

–भोजन के लिए दूसरे के घर में प्रवेश करने पर कम खाये-पिये, और रूप पर मन मत टिकाये। (१.१३.५२)

–वह लंबी डोर वाले, बंधनयुक्त, मछली पकड़ने वाले कांटे को ही निगलता है जो अतिथि के बैठे हुए अकेला भोजन करता है। (२.२१.२०२)

–ब्राह्मण ने जिन कामभोगों का तिरस्कार किया, उन्हें तू उपभोग करने जा रहा है। हे राजन्! वमन किये हुए को खाने वाले की प्रशंसा नहीं होती है। (१.१५.३५४)

मन

–यदि मन दूषित न हो, तो प्रतीत्य-कर्मस्पर्श नहीं करता। जो पाप करने के लिए उत्सुक नहीं है, ऐसे भद्रजन को पाप नहीं लगता। (१.४.७६)

मनुष्य-जीवन

–इस लोक में मनुष्यों का जीवन सौ वर्ष ही है। यह सीमा प्राप्त होने से पहले ही आदमी टूटे हुए सरकंडे के समान सूखने लगता है। (१.१५.३५)

–छलनी में पानी के समान यह समय सिमटता जा रहा है। ऐसे छोटे-से जीवन में प्रमाद करने का समय नहीं है। (२.१७.२२३)

–ज्यों ज्यों कपड़ा बुना जाता है, त्यों त्यों बुनने के लिए शेष रहा तागा थोड़ा होता जाता है – वैसा ही मनुष्यों का जीवन है! (२.२२.१०६)

मितभाषिता

–जो बुद्धिमान समय पर विचारपूर्वक थोड़ा ही बोलता है, वह सभी शत्रुओं को वैसे ही अधिकार में कर लेता है जैसे गरुड़ सर्प को। (१.४.१२४)

मित्रता

– बार-बार के संवास से मित्रता सुदृढ़ होती है। (२.१८.५३)

– सत्पुरुष के साथ की गयी मैत्री सुख देने वाली होती है। (१.२.२२)

–मित्र वही होता है जिसे दूसरे फोड़ नहीं सकते, और जिसकी गोद में सिर रख कर ऐसे सोया जा सकता है जैसे पुत्र (माता की गोद में सोता है)। (१.५.६४)

मित्रद्रोह

–जिस वृक्ष की छाया में बैठे अथवा सोये, उसकी डाल को न तोड़ें; क्योंकि मित्र-द्रोह करने से पाप होता है। (१.१०.१५१)

–जो इस लोक में मित्रों के साथ द्रोह करता है, वह कुष्ठी-कोढ़ी होता है। काया छूटने पर मित्रद्रोही नरक में उत्पन्न होता है। (१.१६.२२३)

–जिस प्रकार मजबूत जड़ वाले वट-वृक्ष का पवन कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता, उसी प्रकार शत्रु भी उसे परास्त नहीं कर सकते, जो कि मित्रों के साथ द्रोह नहीं करता है। (२.२२.२१)

मूर्ख

– मूर्ख की संगत मत करो। मूर्खों से समागम दुःखपूर्ण होता है। (१.९.८६)

– जटा और मृगछाला से मूर्खों की सुरक्षा नहीं होती। (१.१५.२२)

–आर्य धर्म को न जानने वाले मूर्ख दिन-रात यही बातचीत करते रहते हैं – मेरा हिरण्य, मेरा सोना! (१.२.१३७)

–जो शुद्ध, निर्मल, दोषरहित मनुष्य को दोषी ठहराता है, उस दोषी ठहराने वाले मूर्ख को ही पाप लगता है। जैसे पवन के विरुद्ध फेंकी गयी सूक्ष्म धूलि इसे फेंकने वाले पर ही जा गिरती है। (१.५.९४)

मूर्ख-पंडित

–जहां मूर्ख बोलते हैं, वहां मुक्त भी बँध जाते है; और जहां पंडित बोलते हैं, वहां बँधे हुए भी मुक्त हो जाते हैं। (१.१.१२०)

मृत्यु

–मृत्यु द्वारा पकड़ा हुआ होने पर क्या हो सकती है रति, और क्या धन की कामना? (१.१५.३७)

– मैं आज ही प्रव्रजित होऊंगा, कौन जाने कल मरना हो जाय! (२.१९.४५)

–पुरुष हों या नारियां, ये युवावस्था में भी मरते हैं। अतः कौन जीवन पर यह भरोसा करके चले कि मैं (अभी) युवा हूं। (२.२२.१०१)

–जिस प्रकार आदमी यदि नौका को पानी में चलाता है, तो वह उसे किनारे पर ले ही जाती है, उसी प्रकार जरा और व्याधि मर्त्य को निरंतर मृत्यु के नियंत्रण में ले जाती रहती हैं। (१.१५.३४४)

मृत्युपरायणता

– जवान और बूढ़े, मूर्ख और पंडित, संपन्न और विपन्न – ये सभी मृत्युपरायण हैं, जैसे पके हुए फलों का हर समय गिरने का भय बना रहता है, वैसे ही उत्पन्न हुए मर्त्यों को हर समय मरने की आशंका बनी रहती है। (१.११.८७-८८)

याचक

–याचक अप्रिय होता है, और ऐसे ही याचना की पूर्ति न करनेवाला भी। (१.७.५५)

रुदन

– संत पुरुष रोने को बेकार कहते हैं। (१.५.११८)

वाणी

– जब बोले मनोज्ञ वाणी ही बोले, अ-मनोज्ञ कभी नहीं। (१.१.२८)

विशुद्धि

–हीन ब्रह्मचर्य से क्षत्रिय के रूप में उत्पन्न होता है, मध्यम ब्रह्मचर्य से देवता के रूप में, और उत्तम ब्रह्मचर्य से विशुद्ध हो जाता है। (१.८.७५)

– उत्तम धर्म का आचरण कर सारे वर्ण विशुद्ध हो जाते हैं। (२.२२.४३९)

विश्वास

–स्वाद वाला हो या बिना स्वाद वाला, थोड़ा हो या बहुत, विश्वस्त होकर जहां खाया जाता है (वही अच्छा लगता है)। रसों में विश्वास ही प्रधान है। (१.४.१८४)

वैधव्य

–पानी न होने पर नदी नग्न होती है, राजा न होने पर राष्ट्र नग्न होता है, दस भाई होने पर भी विधवा स्त्री नग्न होती है। संसार में वैधव्य कड़वा होता है। (२.२२.१८४०)

वैर

–जो न किसी को मारता है, न मरवाता है; न जीतता है, न जितवाता है; जो सब प्राणियों के प्रति मैत्री का अंश लिए रहता है, उसका किसी से वैर नहीं होता है। (१.१०.१४४)

–'मुझे गाली दी', 'मुझे मारा','मुझे हराया', 'मुझे लूट लिया' –जो ऐसी बातें सोचते रहते हैं, उनका वैर कभी शांत नहीं होता। (१.५.११३)

–वैर, वैर से कभी शांत नहीं होता, अवैर से ही शांत होता है –यह सदा से चला आ रहा धर्म है। (१.५.११५)

शील

– लोक में शील से बढ़ कर कुछ नहीं है। (१.१.८६)

–शील ही वह नया विलेपन है, जिसकी सुगंध कभी समाप्त नहीं होती है। (१.६.९२)

श्रद्धा

–श्रद्धाविहीन से मेल न करे, वह सूखे कुएं के समान होता है जिसे खोदने पर कीचड़ की गंध वाला पानी ही निकलता है। (२.१८.१३०)

श्रमण

–जो कोप करने योग्य बात पर कोप नहीं करता, ऐसा सत्पुरुष कभी क्रुद्ध नहीं होता, क्रुद्ध हो तो कोप को प्रकट नहीं करता। संसार में ऐसे मनुष्य को 'श्रमण' कहते हैं। (१.१०.२४)

श्रेष्ठता

–अश्व की श्रेष्ठता उसके वेग से, बैल की उसकी भार खींचने की क्षमता से, गाय की उसके दोहन से और पंडित की उसके भाषित से जानी जाती है। (१.१६.१६८)

संकल्प

–जो पुरुष कल और परसों करता रहता है, उसका पतन हो जाता है। यह जानकर कि भविष्य-काल होता ही नहीं, कौन धीर पुरुष किसी (कुशल) संकल्प को टालेगा? (१.१५.३४८)

संगत

–बुरे आदमी की संगत से बढ़कर कुछ बुरा नहीं होता; भले आदमी की संगत से बढ़कर कुछ अच्छा नहीं होता। (१.२.२३-२४)

–यदि कोई व्यक्ति दुर्गंधयुक्त मछली को कुशाग्र से छूता है, तो वह कुश भी दुर्गंध देने लगते हैं। मूर्खों की संगत भी ऐसी ही होती है। (१.१५.१८३)

–यदि कोई व्यक्ति तगर को पत्ते में लपेटता है, तो वह पत्ता भी सुगंधित हो जाता है। धीर जनों की संगत भी ऐसी ही होती है। (१.१५.१८४)

सज्जन

–यदि सज्जन कभी विवाद करते हैं, तो शीघ्र ही वापिस समझौता कर लेते हैं। मूर्ख (मिट्टी के) बर्तनों की तरह टूट जाते हैं और शांति को प्राप्त नहीं होते। (१.४.४६)

संत

–वह सभा नहीं होती जिसमें संत न हों। वे संत नहीं होते जो धर्म की बात न बोलें। संत वही होते हैं जो राग, द्वेष और मोह को छोड़ कर धर्म की बात बोलते हैं। (२.२१.४९२)

समझ

–जो किसी बात के पैदा होने पर उसे शीघ्र ही नहीं समझ लेता है, वह शत्रु के वशीभूत हो पीछे पछताता है। जो किसी बात के पैदा होने पर उसे शीघ्र ही समझ लेता है, वह शत्रु के चंगुल से बच निकलता है ओर पीछे पछताता नहीं है। (१.४.१६७-१६८)

समाधि

–इस लोक तथा परलोक में समाधि से बढ़ कर सुख नहीं है। एकाग्रचित्त न तो अपने को दुःख देता है, न दूसरे को। (१.४.१२०)

सार

– घुन को सार अच्छा नहीं लगता। (१.८.१२)

–चूहों को तुष का भी पता रहता है, और तंडुल का भी। वे स्थूल तुष को छोड़ कर तंडुल खाया करते हैं। (१.४.१४९)

सुख -

– संस्कार अनित्य हैं; उत्पन्न होना और नष्ट हो जाना उनका स्वभाव है । वे उत्पन्न हो कर निरुद्ध हो जाते हैं। उनका (नितांत) उपशमन ही सुख है। (१.१.९५)

महानिद्देस

निद्देस के दो भाग हैं –'महानिद्देस' तथा 'चूळनिद्देस'। 'महानिद्देस' सुत्तनिपात के 'अट्ठक वर्ग' की व्याख्या है और 'चूळनिद्देस' इसके 'पारायन वर्ग' (वत्थुगाथा को छोड़कर) और 'खग्गविसाणसुत्त' की।

प्रस्तुत ग्रंथ में अंतर्निविष्ट 'अट्ठक वर्ग' का सारांश सुत्तनिपात के साथ दिया जा चुका है। यहां कुछ अधिक विस्तार के साथ इसे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है।

अट्ठक वर्ग

'अट्ठक वर्ग' में सोलह सुत्त हैं, जिनका आशय संक्षेप में निम्न प्रकार से है

(१) कामसुत्त

इसमें कामभोगों के दुष्परिणामों के बारे में बतलाया गया है। भोग-विलास की इच्छा करनेवाले की इच्छा पूरी होने पर वह प्रसन्न हो उठता है, परंतु ऐसा न होने पर वह तीर-चुभे के समान पीड़ित होता है। अतः व्यक्ति को सदा स्मृतिमान रह, कामभोगों का परित्याग कर देना चाहिए ।

(२) गुहट्ठक सुत्त

अल्प जल वाले क्षीण जलाशय की मछलियों के समान तृष्णा के वशीभूत हो तड़फड़ानेवालों को देखो। इसे देख, भवों में आसक्ति न करता हुआ तृष्णा-रहित हो विचरण करे।

(३) दुट्ठट्ठक सुत्त

आसक्तियुक्त व्यक्ति ही धर्म को लेकर विवादों में पड़ता है, आसक्तिरहित इनमें क्योंकर और कैसे पड़ेगा? उसे न तो आत्म-दृष्टि होती है और न उच्छेद-दृष्टि। उसने यहीं सारी दृष्टियों को दूर कर देता है।

(४) सुद्धट्ठक सुत्त

जिसने वेदनाओं के स्तर पर धर्म को सम्यक प्रकार से समझ लिया हो, वह महाप्रज्ञ ऊंची-नीची दृष्टियों के फेर में नहीं पड़ता। वह खुला विचरण करता है। उसे यहां सीखने के लिए कुछ शेष नहीं रहता।

(५) परमट्ठक सुत्त

संसार में (मिथ्या-) ज्ञान अथवा शील-व्रत के आधार पर किसी दृष्टि को स्थापित न करे। न तो अपने आप को दूसरों के समान समझे, और न उनसे हीन अथवा श्रेष्ठ। किसी भी दृष्टि में अनासक्त ब्राह्मण को इस संसार में कौन विचलित कर सकता है?

(६) जरासुत्त

इसमें जीवन की अल्पता एवं असारता पर प्रकाश डालते हुए यह सीख दी गयी है कि एकाग्रचित्त हो विचरण करने वाला, एकांतचिंतन में लीन रहने वाला, अपने आप को पुनर्जन्म में न पड़ने दे।

(७) तिस्समेत्तेय्यसुत्त

इसमें मैथुन-धर्म के दुष्परिणामों का बखान करते हुए यह सीख दी गयी है कि मुनि इन्हें जानकर अकेला ही दृढ़तापूर्वक विचरण करे और मैथुन का सेवन न करे।

(८) पसूरसुत्त

इसमें यह उपदेश निहित है कि दृष्टि को लेकर किसी विवाद में नहीं पड़ना चाहिए। फिर भी यदि कोई विवाद के लिए आगे आये और कहे कि 'यही सच है', तो उसे कहना चाहिए कि यहां बहस करने के लिए कोई नहीं है।

(९) मागण्डियसुत्त

इसमें भी भगवान ने दृष्टिवाद का खंडन कर निर्वाण-प्राप्ति का मार्ग बतलाया है।

(१०) पुराभेदसुत्त

इसके अंतर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि जिसका लोक में अपना कुछ नहीं है, जो अभाव के बारे में कुछ नहीं सोचता और सिद्धांतों के फेर में नहीं पड़ता, वह 'शांत' कहलाता है।

(११) कलहविवादसुत्त

इसमें कलह, विवाद, विलाप आदि के कारणों पर प्रकाश डाला गया है। ये सभी प्रिय से उत्पन्न होते हैं। प्रिय का निदान है कामना। कामना का आधार है सुखद अथवा दुःखद वेदनाएं। इन वेदनाओं का आधार है स्पर्श और स्पर्श का नाम-रूप।

(१२) चूळवियूहसुत्त

इसमें प्रज्ञप्त किया गया है कि 'सत्य तो एक ही है, दूसरा है ही नहीं, जिसके बारे में लोक परस्पर विवाद करें। परंतु नाना मत वाले श्रमण अपनी ओर से नाना सत्यों की घोषणा करते रहते हैं, जिससे ये सब एक ही बात नहीं बोलते हैं।

(१३) महावियूहसुत्त

इसमें भगवान का संदेश है कि सभी शील-व्रत तथा सदोष-निर्दोष कर्मों को छोड़कर, और शुद्धि-अशुद्धि की कामना न करते हुए, विरक्त होकर, शांति के लिए विचरण करना चाहिए। ब्राह्मण विवेक का मार्ग अपना कर तृष्णा और दृष्टि के फेर में नहीं पड़ता।

(१४) तुवट्टक सुत्त

इसमें भिक्षुओं की चर्या पर प्रकाश डालने के अनंतर कहा गया है कि भिक्षु सदा स्मृतिमान रह, अप्रमत्त हो, भगवान की शिक्षा का स-सम्मान अभ्यास करे।

(१५) अत्तदण्डसुत्त

इसमें भगवान बुद्ध के संविग्न होकर घर छोड़ने का कारण प्रज्ञप्त किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें मुमुक्षुओं के लिए अनेक उपदेश भी हैं, यथा –सारी

कामनाओं को सर्वथा बींध कर अपनी मुक्ति के लिए अभ्यास करे; निर्वाण चाहने वाला व्यक्ति निद्रा, तंद्रा और आलस्य को जीते, प्रमाद में न रहे, अभिमान में न पड़े; पुराने का अभिनंदन न करे, नये की चाह न करे, खोये की सोच न करे और तृष्णा में लिप्त न हो; इत्यादि।

(१६) सारिपुत्तसुत्त

इसके अंतर्गत सारिपुत्त ने बंधन में जकड़े हुए बहुत से प्राणियों की ओर से भगवान से अनेक प्रश्न किये जिनका उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर समाधान किया और अंततः भिक्षुओं को, स्मृतिमान रह, अंधकार का नाश करने के लिए आह्वान किया।

निद्देस

परंपरागत मान्यता के अनुसार प्रस्तुत ग्रंथ में उपलब्ध आगमांश की व्याख्या धर्मसेनापति सारिपुत्त की देन है। यह व्याख्या मौलिक, विशद तथा सारगर्भित है। इसके अध्ययन से इसमें विवेचित सामग्री का आशय एकदम स्पष्ट हो जाता है।

इस व्याख्या का लाभ उठाने के लिए इसकी शैली से परिचित होना आवश्यक है। अतः इसकी कुछ विशेषताओं का उल्लेख नीचे किया जा रहा है ।

आगम से उद्धरण

व्याख्या करते समय अनेक स्थलों पर भगवान बुद्ध के वचन उद्धृत किये गये हैं। यथाभेरवेसु च न सम्पवेधेय्याति। ... वुत्तं हेतं भगवता – "एतं नून तं भयं भेरवं न जहे आगच्छती"ति। (महानि० १५८)

वैकल्पिक अर्थ एवं व्याख्याएं

अनेक स्थलों पर वैकल्पिक अर्थ एवं व्याख्याएं भी की गयी हैं। यथा

पञ्ञं पुरक्खत्वाति। (महानि० २०४)

इसका अर्थ कर चुकने के पश्चात 'अथ वा' का प्रयोग कर इसी संदर्भ को अन्य दो प्रकार से भी समझाया गया है।

पर्यायवाची शब्द

शब्दों का अर्थ बतलाने के लिए उनके पर्यायवाची शब्दों की सूची दी गयी है। यथा

विचरन्तीति विचरन्ति विहरन्ति इरियन्ति वत्तन्ति पालेन्ति यपेन्ति यापेन्ति।

(महानि० ९९)

व्याख्या की पुनरावृत्ति एवं 'पेय्याल'

यही शब्द जहां कहीं पुनः प्रस्तुत हुए हैं, वहां-वहां भी इनके पर्यायवाची शब्दों की सूची अथवा व्याख्या को, प्रायः कर, ज्यों-का-त्यों दोहराया गया है। कहीं-कहीं इसे 'पेय्याल' के रूप में भी दर्शाया गया है। यथा

कामा ति। उद्दानतो द्वे कामा – वत्थुकामा च किलेसकामा च। कतमे वत्थुकामा? ... इमे वुच्चन्ति वत्थुकामा। कतमे किलेसकामा?... इमे वुच्चन्ति किलेसकामा।

(महानि० १)

इसी ग्रंथ में "कामा" शब्द की यही व्याख्या 'पेय्याल' के रूप में अन्य चार स्थानों पर भी पायी जाती है।

प्रकार भेद

विवेचन किये जाने वाले शब्द के प्रकार भी आवश्यकतानुसार दर्शाये गये हैं, और यत्र-तत्र उनकी आगे व्याख्या भी की गयी है। यथा

पुत्ता ति। चत्तारो पुत्ता – अत्तजो पुत्तो, खेत्तजो पुत्तो, दिन्नको पुत्तो, अन्तेवासिको पुत्तो।

(महानि० ९३)

सल्लं ति सत्त सल्लानि – रागसल्लं, दोससल्लं, मोहसल्लं, मानसल्लं, दिट्ठिसल्लं, सोकसल्लं, कथंकथासल्लं।

कतमं रागसल्लं? ... कतमं दोससल्लं? ... कतमं मोहसल्लं? ... कतमं मानसल्लं? ... कतमं दिट्ठिसल्लं? ... कतमं सोकसल्लं?... कतमं कथंकथासल्लं? ...

(महानि० १७४)

निदान सहित व्याख्या

पदों की व्याख्या करते समय आवश्यकतानुसार उनका निदान भी प्रस्तुत किया गया है। यथा

ब्राह्मणो ति सत्तन्नं धम्मानं बाहितत्ता ब्राह्मणो ... (महानि० २५)

भिक्खू ति सत्तन्नं धम्मानं भिन्नत्ता भिक्खु ... (महानि० १८)

बुद्धो ति केनट्ठेन बुद्धो? ... (महानि० १९२)

मुस्सते वापि सासन्ति द्वीहि कारणेहि सासनं मुस्सति ... (महानि० ५०)

सोदाहरण व्याख्या

अनेक स्थलों पर प्रासंगिक उदाहरण प्रस्तुत कर विषय को समझाया गया है। यथा

मोसवज्जे न निय्येथाति। (महानि० १७८)

यहां 'मोसवज्ज' (मुसावाद) का आशय समझाने के लिए जान-बूझ कर झूठ बोलने के अनेक उदाहरण दिये गये हैं, जैसे अनजाने को जाना हुआ और जाने हुए को अनजाना, और इसी प्रकार न देखे हुए को देखा हुआ और देखे हुए को अनदेखा, बतलाना।

पद-निष्पत्ति

यत्र-तत्र पदों की निष्पत्ति पर भी प्रकाश डाला गया है। यथा

नागो'ति। आगुं न करोतीति – नागो, न गच्छती ति नागो, नागच्छती ति – नागो। (महानि० ८०)

साधना-पक्ष

साधना-पक्ष को भी यत्र-तत्र उजागर किया गया है। यथा

सीतं अथुण्हं अधिवासयेय्याति। (महानि० २०१)

इसकी व्याख्या करते हुए बतलाया गया है कि 'शीत' और 'उष्ण' दो कारणों

से होते हैं –(१) भीतरी धातु के प्रकोपसे, और (२) बाहरी मौसम के कारण। भीतरी धातु के प्रकोपसे शरीर पर होने वाली सर्दी-गर्मी कोस्पष्ट रूप से अनुभव कर पाना विपश्यी साधकों के लिए सहल होता है।

निद्दं न बहुलीकरेय्याति। (महानि॰ १६१)

इसकी व्याख्या करते हुए बतलाया गया है कि रात और दिन के छह भाग करकेइनमें से पांच भागों में तो प्रतिपत्ति का कामकरेऔर एक भाग में विश्राम करे।

प्रकृत संदर्भों की आवृत्ति

'अट्ठक वर्ग' के विभिन्न प्रकरण-प्राप्त संदर्भों की व्याख्या पूरी हो चुकने पर इन्हीं संदर्भों को पुनः दोहराया गया है। यथा

कामं कामयमानस्स ... लद्धा मच्चो यदिच्छति। (महानि॰ १)

इसकी व्याख्या पूरी हो जाने पर अंत में इसी गाथा कोपुनः दोहराया गया है:

तेनाह भगवा – "कामं कामयमानस्स ... लद्धा मच्चो यदिच्छती"ति (महानि॰ १)

चूळनिद्देस

निद्देस के दो भाग हैं – '**महानिद्देस' तथा 'चूळनिद्देस'**। 'महानिद्देस' में सुत्तनिपात के 'अट्ठक वर्ग' की व्याख्या है और 'चुळनिद्देस' में इसके 'पारायन वर्ग' (वत्थुगाथा को छोड़ कर) और'खग्गविसाणसुत्त' की।

प्रस्तुत ग्रंथ में अंतर्निविष्ट **'पारायन वर्ग'** और **'खग्गविसाणसुत्त'** का सारांश सुत्तनिपात के साथ दिया जा चुका है। यहां कुछ अधिक विस्तार के साथ इसे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है।

पारायन वर्ग

इस वर्ग के अंतर्गत बावरी ब्राह्मण द्वारा भगवान बुद्ध के पास प्रेषित सोलह माणवों द्वारा एक-एक करके उनसे पूछे गये गंभीर प्रश्नों का संग्रह है । इनमें से कुछेक प्रश्नोत्तर इस प्रकार से हैं

(१) अजित माणव

प्रश्न –संसार किससे ढका हुआ है? किससे प्रकाशित नहीं होता? इसका क्या आलेप है? उसके लिये क्या महाभय है?

उत्तर –संसार अविद्या से ढका हुआ है। मात्सर्य और प्रमाद के कारण वह प्रकाशित नहीं होता। तृष्णा को मैं इसका आलेप कहता हूं। दुःख इसके लिए महाभय है।

(२) तिस्समेत्तेय्य माणव

प्रश्न – इस संसार में कौन संतुष्ट है? किसमें चंचलताएं नहीं हैं ?

उत्तर –जो कामभोगों को त्याग ब्रह्मचारी है, वितृष्ण है, सदा स्मृतिमान है, और जो भिक्षु ज्ञान (अर्थात सम्यक दर्शन) द्वारा मुक्त है, उसमें चंचलताएं नहीं होती हैं।

(३) पुण्णक माणव

प्रश्न –इस संसार में जिन ऋषियों,मनुष्यों, क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों ने देवताओं के लिए बहुत यज्ञ किये थे, क्या वे जन्म और बुढ़ापे से पार चले गये?

उत्तर –लाभ के कारण देवताओं के गुण गाने, प्रशंसा करने, चर्चा करने, यज्ञ करने और कामभोग की इच्छा करने से यज्ञों में आसक्त और भवतृष्णा में रत ये लोग जन्म और बुढ़ापे से पार नहीं जा पाये।

(४) मेत्तगू माणव

प्रश्न – संसार में जो अनेक प्रकार के दुःख हैं, उनकी उत्पत्ति कहां से है?

उत्तर – ये (तृष्णा, दृष्टि, क्लेश, कर्मादि दस प्रकार की) उपधियों से उत्पन्न होते हैं।

(५) धोतक माणव

प्रश्न –मुझे ऐसा उपदेश दें जिससे मैं निर्वाण धर्म को जान लूं और आकाश के समान निर्मल हो, यहीं शांत वा अनासक्त होकर विचरण करने लगूं।

उत्तर –ऊपर, नीचे, तिरछे या बीच में जो कुछ भी जानते हो, उसे संसार में आसक्ति जानकर पुनर्जन्म के लिए तृष्णा मत करो।

(६) उपसीव माणव

प्रश्न –ऐसा कौन सा आलंबन है जिसके सहारे मैं अकेला इस बहुत बड़ी बाढ़ को पार कर सकूं ?

उत्तर – आकिंचन्यायतन को देखते हुए, स्मृतिमान हो, 'कुछ नहीं है' को आलंबन बनाकर बाढ़ को पार कर जाओ।

(७) नन्द माणव

प्रश्न – किसी को ज्ञान के कारण मुनि कहते हैं, अथवा आजीविका के कारण?

उत्तर –कुशलजन न तो दृष्टि, न श्रुति और न ही ज्ञान के कारण किसी को मुनि कहते हैं। मैं शोक ,पाप और तृष्णा से रहित हो विचरण करने वाले को मुनि कहता हूं।

(८) हेमक माणव

प्रश्न –तृष्णा का प्रहाण करने वाला कौन-सा धर्म है जिसे जानकर, स्मृतिमान हो, विचरण करते हुए संसार में तृष्णा को पार किया जा सकता है?

उत्तर –यहां दृष्ट, श्रुत, ज्ञात प्रिय रूपों के प्रति दृढ़ आसक्ति को दूर करना

अच्युत निर्वाण पद कहलाता है। जो स्मृतिमान यह जानकर इसी जीवन में शांत हो गये, सदा के लिए उपशांत वे तृष्णा को पार कर गये होते हैं।

(९) तोदेय्य माणव

प्रश्न – जिसमें कामनाएं निवास नहीं करतीं, जिसमें तृष्णा नहीं होती, और जो संदेह से परे चला जाता है, उसका विमोक्ष कैसा होता है?

उत्तर – जिसमें कामनाएं निवास नहीं करतीं, जिसमें तृष्णा नहीं होती, और जो संदेह से परे चला जाता है, उसका कोई अन्य विमोक्ष नहीं होता है।

(१०) कप्प माणव

प्रश्न – जलाशय रूपी संसार के बीच रहने वालों के लिए बुढ़ापा और मृत्यु रूपी महाभयानक बाढ़ के आने पर (सुरक्षा के लिए) द्वीप बतलाएं।

उत्तर – अकिंचन और अनासक्ति ही वह द्वीप है, कोई दूसरा नहीं।

(११) जतुकण्णि माणव

प्रश्न – ऐसा धर्म बतलाएं जिससे मैं यहां जन्म और बुढ़ापे को दूर करना जान लूं।

उत्तर – नैष्क्रम्य को कल्याणकारी जानकर कामभोगों में आसक्ति को त्याग दो। तुम्हें अपनाने अथवा त्यागने के लिए कुछ न रहे। पहले के संस्कारों को नष्ट कर दो और पीछे कुछ न अपनाओ। यदि तुम बीच में कुछ ग्रहण नहीं करोगे, तो उपशांत होकर विचरण करोगे।

(१२) भद्रावुध माणव

प्रश्न – आपके वचन सुनने की आकांक्षा से जनपदों से नाना प्रकार के लोग एकत्र हुए हैं, उन्हें वैसा ही धर्म समझायें जैसा कि आपको विदित है ।

उत्तर – ऊपर, नीचे, तिरछे और बीच में सारी आसक्ति-रूपी तृष्णा को त्याग दो। संसार में लोग जो-जो अपनाते हैं, उसी के कारण मार मनुष्य के पीछे पड़ता है। अतः स्मृतिमान भिक्षु सारे संसार में किसी के प्रति आसक्त न हो।

(१३) उदय माणव

प्रश्न – लोक का बंधन क्या है? उसकी विचरण-भूमि क्या है? किसके त्याग को निर्वाण कहा जाता है?

उत्तर – लोक का बंधन राग है। वितर्क इसकी विचरण भूमि है। तृष्णा का प्रहाण निर्वाण कहलाता है।

(१४) पोसाल माणव

प्रश्न – रूप-संज्ञाओं से रहित, सभी अरूप-संज्ञाओं से मुक्त, 'भीतर और बाहर कुछ नहीं है' – ऐसा देखने वाले व्यक्ति को आगे कैसे ज्ञान उत्पन्न करना चाहिए?

उत्तर – आकिंचन्यायतन को उत्पन्न करने वाले कर्म-संस्कार को जानकर, राग को बंधन समझ कर – ऐसा जान यहां विपश्यना करता है, उस पूर्णता को प्राप्त ब्राह्मण का वह ज्ञान यथार्थ होता है।

(१५) मोघराज माणव

प्रश्न – संसार को किस रूप में देखने वाले को मृत्युराज नहीं देख पाता है?

उत्तर – सदा स्मृतिमान हो शून्य के रूप को देखो। इस प्रकार आत्मदृष्टि का नाश कर मृत्यु को पार कर जाओगे। इस रूप में संसार को देखने वाले को मृत्युराज नहीं देख पाता है।

(१६) पिङ्गिय माणव

प्रश्न – मैं जीर्ण हूं, दुर्बल हूं और मेरी आभा जाती रही है; मेरे नेत्र शुद्ध नहीं हैं और कानों से ठीक सुनायी नहीं देता है। मुझे ऐसे धर्म का उपदेश करें जिसे जान कर मैं यहां जन्म और बुढ़ापे का अंत कर लूं और बीच में मोहमूढ़ होकर न मरूं।

उत्तर – रूपों के कारण परेशान, रूपों के कारण नाश को प्राप्त होने वाली प्रमत्त जनता को देखकर अप्रमत्त बनो और रूप का अंत करो, जिससे कि आवागमन बंद हो।

खग्गविसाणसुत्त

इस सुत्त में इकतालीस गाथाएं हैं। इनमें गैंडे के सींग के समान एकाकी विचरण करने का उपदेश है, जैसे

* सभी प्राणियों के प्रति दंड त्याग कर, उनमें से किसी एक को भी न सताये। पुत्र की भी कामना न करे, सहायक की तो बात ही क्या? गैंडे के सींग के समान एकाकी विचरण करे।

* संसर्ग में रहने वाले को स्नेह उत्पन्न होता है, स्नेह के कारण यह दुःख उत्पन्न होता है। स्नेह से उत्पन्न होने वाले दुष्परिणाम को देखते हुए गैंडे के सींग के समान एकाकी विचरण करे।

* यह विपत्ति है, फोड़ा है, उपद्रव है, रोग है, कांटा है और भय है – कामभोगों में इस दुष्परिणाम को देख कर गैंडे के सींग के समान एकाकी विचरण करे।

* समय-समय पर मैत्री, करुणा, विमुक्ति और मुदिता का अभ्यास करते हुए, सब लोगों के अनुकूल रहते हुए गैंडे के सींग के समान एकाकी विचरण करे।

* राग, द्वेष तथा मोह को छोड़कर, बंधनों को तोड़कर, मृत्यु से भी न डरते हुए गैंडे के सींग के समान एकाकी विचरण करे।

निद्देस

परंपरागत मान्यता के अनुसार प्रस्तुत ग्रंथ में उपलब्ध आगमांशों की व्याख्या धर्मसेनापति सारिपुत्त की देन है। यह व्याख्या मौलिक, विशद तथा सारगर्भित है। इसके अध्ययन से इसमें विवेचित सामग्री का आशय एकदम स्पष्ट हो जाता है।

इस व्याख्या का लाभ उठाने के लिए इसकी शैली से परिचित होना आवश्यक है। अतः इसकी कुछ विशेषताओं का उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

आगम से उद्धरण

व्याख्या करते समय अनेक स्थलों पर भगवान बुद्ध के वचन उद्धृत किये गये हैं। यथा

आदीनवं कामगुणेसु दिस्वाति वुत्तं हेतं भगवता –

"को च, भिक्खवे, कामानं आदीनवो? ..." (चूळनि० खग्गविसाणसुत्तनिद्देस १३६)

आयुष्मान महामोग्गल्लान के वचन भी उद्धृत किये गये हैं। यथा-

अनवस्सुतो परिडय्हमानोति वुत्तं हेतं आयस्मता महामोग्गल्लानेन – "अवस्सुतपरियायञ्च वो, आवुसो, देसेस्सामि अनवस्सुतपरियायञ्च। ..."

(चूळनि० खग्गविसाणसुत्तनिद्देस १४९)

वैकल्पिक अर्थ एवं व्याख्याएं

अनेक स्थलों पर वैकल्पिक अर्थ एवं व्याख्याएं भी की गयी हैं। यथा

कुसलो सब्बधम्मानन्ति। (चूळनि० अजितमाणवपुच्छानिद्देस ८)

इसका अर्थ कर चुकने के पश्चात 'अथ वा' का प्रयोग कर इसी संदर्भ को अन्य तीन प्रकार से भी समझाया गया है।

पर्यायवाची शब्द

शब्दों का अर्थ बतलाने के लिए उनके पर्यायवाची शब्दों की सूची दी गयी है। यथा

वदामीति वदामि आचिक्खामि देसेमि पञ्ञपेमि।

पट्ठपेमि विवरामि विभजामि उत्तानीकरोमि पकासेमीति। (चूळनि० अजितमाणवपुच्छानिद्देस ६)

व्याख्या की पुनरावृत्ति एवं 'पेय्याल'

यही शब्द जहां कहीं पुनः आये हैं, वहां-वहां भी इनके पर्यायवाची शब्दों की सूची अथवा व्याख्या को, प्रायःकर, ज्यों-का-त्यों दोहराया गया है। कहीं-कहीं इसे 'पेय्याल' के रूप में भी दर्शाया गया है। यथा

कामाति उद्दानतो द्वे कामा – वत्थुकामा च किलेसकामा च। कतमे वत्थुकामा?

... इमे वुच्चन्ति वत्थुकामा। कतमे किलेसकामा?... इमे वुच्चन्ति किलेसकामा।
(चूळनि० अजितमाणवपुच्छानिद्देस ८)

इसी ग्रंथ में "कामा" शब्द की यही व्याख्या 'पेय्याल' के रूप में अन्य बारह स्थानों पर भी पायी जाती है।

प्रकार भेद

विवेचन किये जाने वाले शब्द के प्रकार भी आवश्यकतानुसार दर्शाये गये हैं, और यत्र-तत्र उनकी आगे व्याख्या भी की गयी है। यथा

आसवाति चत्तारो आसवा – कामासवो, भवासवो, दिट्ठासवो, अविज्जासवो।
(चूळनि० जतुकण्णिमाणवपुच्छानिद्देस ६९)

चक्खुमाति भगवा पञ्चहि चक्खूहि चक्खुमा – मंसचक्खुनापि चक्खुमा, दिब्बचक्खुनापि चक्खुमा, पञ्ञाचक्खुनापि चक्खुमा, बुद्धचक्खुनापि चक्खुमा, समन्तचक्खुनापि चक्खुमा। क थं भगवा मंसचक्खुनापि चक्खुमा? ...

क थं भगवा दिब्बेन चक्खुनापि चक्खुमा? ...

क थं भगवा पञ्ञाचक्खुनापि चक्खुमा? ...

क थं भगवा बुद्धचक्खुनापि चक्खुमा? ...

क थं भगवा समन्तचक्खुनापि चक्खुमा? ... (चूळनि॰ मोघराजमाणवपुच्छानिद्देस ८५)

निदान सहित व्याख्या

पदों की व्याख्या क रते समय आवश्यक तानुसार उनका निदान भी प्रस्तुत किया गया है। यथा

ब्राह्मणोति सत्तन्नं धम्मानं बाहितत्ता ब्राह्मणो। ... (चूळनि॰ मेत्तगूमाणवपुच्छानिद्देस २८)

भिक्खूति सत्तन्नं धम्मानं भिन्नत्ता भिक्खु। ... (चूळनि॰ अजितमाणवपुच्छानिद्देस ८)

वेदगू भावितत्तोति क थं च भगवा वेदगू? ... क थं भगवा भावितत्तो? ...
(चूळनि॰ मेत्तगूमाणवपुच्छानिद्देस १८)

ये च सङ्खातधम्मासेति। सङ्खातधम्मा वुच्चन्ति अरहन्तो खीणासवा ।

किं क ारणा सङ्खातधम्मा वुच्चन्ति अरहन्तो खीणासवा? ...
(चूळनि॰ अजितमाणवपुच्छानिद्देस ७)

सोदाहरण व्याख्या

अनेक स्थलों पर प्रासंगिक उदाहरण प्रस्तुत क र विषय को समझाया गया है। यथा

खग्गविसाणक प्पोति। (चूळनि॰ खग्गविसाणसुत्तनिद्देस १२१)

यहां 'विसाणक प्पो' का आशय लोणक प्पो, तित्तक प्पो, मधुरक प्पो, अग्गिक प्पो, हिमक प्पो, समुद्दक प्पो तथा सत्थुक प्पो के उदाहरण देक र स्पष्ट किया गया है।

पद-निष्पत्ति

यत्र-तत्र पदों की निष्पत्ति पर भी प्रकाश डाला गया है। यथा

नागोति नागो; भगवा आगुं न करोतीति नागो,

न गच्छतीति नागो, न आगच्छतीति नागो। (चूळनि॰ पारायनानुगीतिगाथानिद्देस १०२)

साधना-पक्ष

साधना-पक्ष को भी यत्र-तत्र उजागर किया गया है। यथा

सुञ्ञतो लोकं अवेक्खस्सूति। (चूळनि॰ मोघराजमाणवपुच्छानिद्देस ८८)

इसकी व्याख्या करते हुए बड़े विस्तार से समझाया गया है कि कोई व्यक्ति किन दो कारणों से लोक को शून्य के रूप में देखता है, और यह देखना कैसे, और कितने प्रकार से होता है। भगवान की वाणी उद्धृत करते हुए यह भी बतलाया गया है कि लोक की शून्यता से अभिप्राय है इसमें आत्मभाव का न रहना। विपश्यी साधकों द्वारा इस विवेचन को अनुभूति के स्तर पर अधिक सुगमता से समझा जा सकता है।

प्रकृत संदर्भों की आवृत्ति

'पारायन वर्ग' तथा 'खग्गविसाणसुत्त' के विभिन्न प्रकरण-प्राप्त संदर्भों की व्याख्या पूरी हो चुकने पर इन्हीं संदर्भों को पुनः दोहराया गया है। यथा

केनस्सु निवुतो लोको ... किंसु तस्स महब्भयं। (चूळनि॰ अजितमाणवपुच्छानिद्देस १)

इसकी व्याख्या पूरी हो जाने पर अंत में इसी गाथा को पुनः दोहराया गया है

तेनाह सो ब्राह्मणो –

"केनस्सु निवुतो लोको ... किंसु तस्स महब्भय"न्ति।। (चूळनि॰ अजितमाणवपुच्छानिद्देस १)

अतिरिक्त विषयवस्तु

'पारायन वर्ग' के अंतर्गत बावरी ब्राह्मण द्वारा भगवान बुद्ध के पास भिजवाये गये सोलह माणवों द्वारा उनसे पूछे गये प्रश्नों और भगवान द्वारा दिये गये उनके

उत्तरों की संपूर्ण व्याख्या हो चुकने के उपरांत यह भी दर्शाया गया है कि भगवान से समाधान प्राप्त कर कौन-कौनसे प्रश्नकर्ता अरहंत हो गये और किसे यह विरज, विमल, धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ – "जो कुछ समुदय स्वभाव वाला है, वह निरोध स्वभाव वाला भी है।"

☸

पटिसम्भिदामग्ग

इस ग्रंथ का विषय 'पटिसम्भिदा' (प्रतिसंवित्-संबंधी ज्ञान) का विवेचन करना है। यह विषय अत्यंत गहन है और संभवतः, इसी कारण इस ग्रंथ के अंतिम 'उद्दान' में इसे 'सागर के समान गंभीर', 'तारकाकीर्णनभ के समान (विस्तीर्ण)' और प्राकृतिक झील के समान विशाल बतलाया गया है।

यह ग्रंथ तीन वर्गों में बँटा हुआ है – 'महावग्ग', 'युगनद्धवग्ग' तथा 'पञ्ञावग्ग'। इनमें से पहले का आकार बहुत बड़ा है, दूसरे का मँझला और तीसरे का छोटा। प्रत्येक वर्ग के अंतर्गत दस-दस 'कथाएं' हैं, जिनमें बुद्धधर्म के किसी-न-किसी तत्त्व का विशद विवेचन किया गया है।

बुद्ध-वाणी को सांगोपांग समझने के लिए यह रचना एक नितांत उपयोगी संदर्भ ग्रंथ के समान है, क्योंकि इसमें उपलब्ध सामग्री किसी भी जिज्ञासु की बुद्धधर्म-विषयक जिज्ञासा शांत करने के लिए पर्याप्त है।

इस ग्रंथ की प्रत्येक 'कथा' का, वर्गवार, संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

१. महावग्ग

(१) ञाणकथा

इस कथा का आकार बहुत बड़ा है, जो समूचे ग्रंथ के चतुर्थांश से भी कुछ अधिक ही है। इसमें तिहत्तर प्रकार के ज्ञान उल्लेख प्राप्त हैं, जिनमें से पहले सड़सठ श्रावकों के लिए सामान्य और अंतिम छः असामान्य हैं।

श्रावकों के लिए सामान्य ज्ञान हैं – श्रुतमय, शीलमय, समाधिभावनामय, धर्मस्थिति, संमर्षण, उदयव्ययानुपश्यना, विपश्यना, आदीनव, संस्कार-उपेक्षा, गोत्रभू, मार्ग, फल, विमुक्ति, प्रत्यवेक्षण, वस्तुनानात्व, गोचरनानात्व, चर्यानानात्व, भूमिनानात्व, धर्मनानात्व, इत्यादि।

उनके लिए असामान्य ज्ञान हैं – परचित्त ज्ञान, प्राणियों का आशयानुशयज्ञान, दो प्रकार की अभिव्यक्ति वाला चमत्कारिक ज्ञान,

महाक रुणासमापत्तिज्ञान, सर्वज्ञता ज्ञान तथा अनावरण ज्ञान। ये ज्ञान, वस्तुतः, तथागत की संपत्ति हैं।

(२) दिट्ठिक था

इसमें बतलाया गया है कि दृष्टि क्या होती है, इसके कि तने क ारण हैं, कि तने पूर्वाग्रह, कि तने प्रक ार, कि तने अभिनिवेश, और क्या होता है दृष्टि-क ारणों क ा समुच्छेद।

(३) आनापानस्सतिक था

इसमें उल्लेख कि या गया है कि आनापानस्मृति को भावित क रने के समाधि से संबंधित दो सौ प्रक ार के ज्ञान उत्पन्न होते हैं – आठ बाधक , आठ उपक ारक , अठारह उपक्लेशिक , तेरह वोदानिक , बत्तीस स्मृतिक ारक , इत्यादि।

तदनंतर इनमें से प्रत्येक क ा विस्तृत विवेचन कि या गया है। विवेचन के अंतर्गत 'आनापानस्मृति' की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। – "जिसकी आनापानस्मृति बुद्ध की देशना के अनुसार अभ्यास में लायी जाक र परिपूर्ण और सुभावित हो गयी हो, वह बादलों से मुक्त हुए चंद्रमा के समान इस लोक में भासमान होता है।"

(४) इंद्रियक था

इसमें अनेक सुत्तों के आधार पर बतलाया गया है कि ये पांच इंद्रियां हैं – श्रद्धा-इंद्रिय, वीर्य-इंद्रिय, स्मृति-इंद्रिय, समाधि-इंद्रिय और प्रज्ञा-इंद्रिय।

इन इंद्रियों से संबंधित अनेक विषयों पर भी प्रक ाश डाला गया है, यथा – इनकी विशुद्धि, भावना, प्रतिप्रश्रब्धि; इनक ा समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, आदीनव, निःसरण; और इन्हें क हां तथा कि तने प्रक ार से देखा जाना चाहिए; इत्यादि।

(५) विमोक्खक था

इसमें तीन प्रक ार के विमोक्ष गिनाये गये हें –शून्य, अनिमित्त और अप्रणिहित। फि र इन्हीं तीन विमोक्षों को साथ मिलाते हुए अड़सठ प्रक ार के विमोक्ष भी बतलाये गये हैं। तदनंतर इन सभी क ा आशय भी स्पष्ट कि या गया है।

इसके अतिरिक्त विमोक्ष से संबंधित अनेक विषयों की चर्चा भी की गयी है, यथा – विमोक्ष-मुख, विमोक्ष-प्रत्यनीक, विमोक्षानुलोम, विमोक्ष-विवर्त, विमोक्ष-भावना, इत्यादि।

(६) गतिकथा

इसमें यह दर्शाया गया है कि ज्ञान से संयुक्त प्राणिजात का कौन-कौनसे हेतुओं के प्रत्यय से पुनर्जन्म होता है, और इसी प्रकार ज्ञान से वियुक्त प्राणिजात का भी।

(७) कम्मकथा

इसमें भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल के अच्छे अथवा बुरे कर्मों और उनके विपाकों की चर्चा की गयी है।

(८) विपल्लासकथा

इसमें प्रज्ञप्त किया गया है कि अनित्य में नित्य, दुःख में सुख, अनात्म में आत्मा और असुंदर में सुंदर की भावना करने से संज्ञा, चित्त और दृष्टि का विपर्यास हो जाता है। इसके विपरीत अनित्य में अनित्य, दुःख में दुःख, अनात्म में अनात्मा और असुंदर में असुंदर की भावना करने से संज्ञा, चित्त और दृष्टि का विपर्यास नहीं होता है। पहले प्रकार की भावना से लोग जन्म-मरण के चक्कर में पड़ जाते हैं, और दूसरे प्रकार की भावना से सारे दुःखों से छूट जाते हैं।

(९) मग्गकथा

इसमें 'मार्ग' के संबंध में विविध प्रकार की चर्चा की गयी है, यथा –'मार्ग' से क्या आशय लिया जाना चाहिए, अष्टांगिक मार्ग के आठ अंग किस-किस मार्ग को प्रशस्त करते हैं, और ऐसे ही सात बोध्यंग, पांच बल तथा पांच इंद्रियां भी। इसके अतिरिक्त स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी तथा अरहंत के मार्ग-क्षणों में अष्टांगिक मार्ग के आठों अंगों की भूमिका पर भी प्रकाश डाला गया है।

(१०) मण्डपेय्यकथा

इस कथा में 'मण्ड', 'कसट' और 'पेय्य' –इन तीन शब्दों की चर्चा हुई है।

इनके शब्दार्थ, क्रमशः, हैं –'मांड, 'कचरा' तथा 'पेय'। 'मण्डपेय्य' से तात्पर्य है '(कचरे को छोड़ कर) मांड को पीना।

प्रासंगिक कथा में 'मण्डपेय्य' का उक्त आशय स्पष्ट करने वाले उदाहरण हैं, यथा – 'सम्यकदृष्टि है दर्शनरूपी मांड'; मिथ्यादृष्टि है कचरा'; अतः '(मिथ्यादृष्टिरूपी कचरे को छोड़ कर) सम्यकदृष्टि से दर्शनरूपी मांड को पीना' है –'मण्डपेय्य'।

इस कथा में बतलाया गया है कि 'मांड' तीन प्रकार के होते हैं, और पांच इंद्रियों, पांच बलों, सात बोध्यंगों, इत्यादि के कैसे-कैसे मण्डपेय्य' हैं।

२. युगनद्धवग्ग

(१) युगनद्धकथा

इसमें अरहत्व-प्राप्ति के इन चार मार्गों पर प्रकाश डाला गया है –१. शमथ को पूर्वगामी कर विपश्यना की भावना, २. विपश्यना को पूर्वगामी कर शमथ की भावना, ३. शमथ तथा विपश्यना की साथ साथ भावना, और ४. चित्त की एकाग्रता से मार्ग मिल जाने पर उसकी भावना।

इन चार मार्गों का आशय स्पष्ट करने के लिए इनमें से प्रत्येक का, पृथक-पृथक, विस्तृत विवेचन भी किया गया है।

'शमथ' और 'विपश्यना' की भावना का स्वरूप 'युगनद्ध' (जुए में जुते) समान लगता है। इसी को दृष्टि में रख कर इस कथा को 'युगनद्धकथा' की संज्ञा दिया जाना प्रतीत होता है।

(२) सच्चकथा

इसमें इन चार सत्यों को प्रज्ञप्त किया गया है –'यह दुःख है', 'यह दुःख का समुदय है', 'यह दुःख का निरोध है', और 'यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है।'

इनके प्रतिवेधन, लक्षण, वर्गीकरण, इत्यादि पर भी प्रकाश डाला गया है ।

(३) बोज्झङ्गकथा

इसमें इन सात बोध्यंगों को प्रज्ञप्त किया गया है –स्मृति, धर्मविचय, वीर्य,

प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा। फिर यह भी समझाया गया है कि इन्हें बोध्यंग कहने का क्या आशय है।

तत्पश्चात आयुष्मान सारिपुत्त के उस सुत्त को उद्धृत किया गया है जिसमें उन्होंने यह बतलाया है कि मैं जब चाहूं तब जिस-किसी बोध्यंग के साथ विहार कर सकता हूं, और उनकी स्थिति और च्यवनता को प्रज्ञापूर्वक जानता रहता हूं। तदनंतर इसी विषय का आगे विवेचन किया गया है।

(४) मेत्ताकथा

इसमें मैत्री-चेतोविमुक्ति को भावित करने से इसके इन ग्यारह शुभ परिणामों की आशा रखने का उल्लेख किया गया है – १. सुख की नींद सोना, २. सुखपूर्वक नींद खुलना, ३. दुःस्वप्न न देखना, ४. मनुष्यों का प्रिय होना, ५. अ-मनुष्यों का प्रिय होना, ६. देवताओं द्वारा रक्षित होना, ७. अग्नि, विष अथवा शस्त्र का प्रभाव न होना, ८. चित्त का शीघ्र ही समाहित हो जाना, ९. मुख का वर्ण खिल उठना, १०. होश में रह प्राण छोड़ना, और ११. आगे प्रतिवेधन न करने पर ब्रह्मलोक तक तो पहुँच ही जाना।

तत्पश्चात सारे सत्त्वों और सारे प्राणियों के प्रति मैत्री-चेतोविमुक्ति का विषय प्रतिपादित किया गया है। ऐसा करते समय यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार मैत्री-चेतोविमुक्ति पांच इंद्रियों, पांच बलों, सात बोध्यंगों और आठ मार्गांगों से परिभावित होती है।

(५) विरागकथा

इसमें यह बतलाया गया है कि विराग मार्ग है, और विमुक्ति फल। तदनंतर इसका निदान भी प्रस्तुत किया गया है।

(६) पटिसम्भिदाकथा

इसमें 'धम्मपटिसम्भिदा' (धर्म-संबंधी ज्ञान), 'अत्थपटिसम्भिदा' (अर्थ-संबंधी ज्ञान), 'निरुक्तिपटिसम्भिदा (निर्वचन-संबंधी ज्ञान) और 'पटिभानपटिसम्भिदा' (ज्ञानदर्शन-संबंधी ज्ञान) के बारे में विवेचन किया गया है, और यह भी स्पष्ट किया गया है कि इन्हें यह संज्ञा तभी दी जा सकती है जबकि इनका प्रज्ञापूर्वक स्पर्श, साक्षात्कार कर लिया गया हो; अन्यथा नहीं।

(७) धम्मचक्क कथा

इसमें 'चक्खु' (चक्षु), 'ञाण' (ज्ञान), 'पञ्ञा' (प्रज्ञा), 'विज्जा' (विद्या) और 'आलोक' – इन पांच धर्मों के आशय का विविध प्रकार से प्रख्यापन करने के उपरांत 'धम्मचक्क' (धर्मचक्र) का विविध प्रकार से आशय समझाया गया है, जैसे

'धर्म को प्रवर्तित करता है और चक्र को भी'; 'चक्र को प्रवर्तित करता है और धर्म को भी'; 'धर्म से प्रवर्तित करता है'; 'धर्माचरण के लिए प्रवर्तित करता है'; 'धर्म में स्थित होकर प्रवर्तित करता है'; 'धर्म में प्रतिष्ठित होकर प्रवर्तित करता है'; 'धर्म में प्रतिष्ठापित करता हुआ प्रवर्तित करता है; इत्यादि ।

(८) लोकुत्तरकथा

इसमें निम्नांकित को 'लोकुत्तरा धम्मा' (लोकोत्तर धर्म) बतलाया गया है

चार स्मृतिप्रस्थान, चार सम्यक प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पांच इंद्रियां, पांच बल, सात बोध्यंग, आर्य अष्टांगिक मार्ग, चार आर्यमार्ग, चार श्रामण्यफल और निर्वाण। तदनंतर 'लोकुत्तरा' शब्द का आशय विविध प्रकार से स्पष्ट किया गया है, जैसे

'लोक को तैर जाते हैं'; 'लोक का अतिक्रमण कर जाते हैं'; 'लोक के अतिरिक्त हैं'; 'लोक से अलिप्त हैं'; 'लोक से विसंयुक्त हैं'; 'लोक की अगति हैं'; 'लोक के अविषय हैं; इत्यादि।

(९) बलकथा

इसमें पांच प्रकार के बल गिनाये गये हैं – श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा। फिर इन पांच को साथ मिलाते हुए अड़सठ प्रकार के बल भी बतलाये गये हैं।

तदनंतर इनमें से प्रत्येक का पृथक-पृथक विवेचन किया गया है।

(१०) सुञ्ञकथा

इसमें पच्चीस प्रकार की शून्यताओं के बारे में बतलाया गया है, यथा – शून्य-शून्यता, संस्कार-शून्यता, विपरिणाम-शून्यता, अग्र-शून्यता, इत्यादि।

३. पञ्ञावग्ग

(१) महापञ्ञाकथा

इसमें बतलाया गया है कि किस-किस प्रकार की अनुपश्यना को भावित करने से किस-किस प्रकार की प्रज्ञा परिपूर्ण होती है, जैसे – अनित्यानुपश्यना से जवनप्रज्ञा, दुःखानुपश्यना से निर्वेधिकप्रज्ञा, अनात्मानुपश्यना से महाप्रज्ञा, इत्यादि। इसी क्रम में नौ प्रकार की प्रज्ञा को भावित करने से 'हासप्रज्ञा' परिपूर्ण हो जाती है, जिसे 'पटिभानसम्भिदा' भी कहते हैं। इसके अर्थ, धर्म, निर्वचन तथा प्रतिभान का विश्लेषण करने से, क्रमशः, प्राप्त होती हैं – 'अत्थपटिसम्भिदा', 'धम्मपटिसम्भिदा', 'निरुत्तिपटिसम्भिदा' तथा 'पटिभानपटिसम्भिदा'। ये चारों प्रज्ञा द्वारा स्पृष्ट, साक्षात्कृत होती हैं।

तत्पश्चात यह इंगित किया गया है कि कौन से चार धर्म भावित किये जाने पर स्रोतापत्ति, सकृदागामित्व, अनागामिता और अरहत्व के फल का साक्षात्कार करवा देते हैं। ये धर्म हैं – सत्पुरुष की संगति, सद्धर्म का श्रवण, सही चिंतन और स्थूल धर्म से लेकर सूक्ष्म धर्म का प्रतिपादन। इससे सोलह प्रकार की प्रज्ञा को प्राप्त हुआ पुद्गल 'पटिसम्भिदा-प्राप्त' जाना जाता है । प्रज्ञा में अग्र होने के कारण बुद्ध ऐसे सभी पुद्गलों में अग्रगण्य होते हैं।

(२) इद्धिकथा

इसमें बतलाया गया है कि 'इद्धि' (ऋद्धि) का आशय 'इज्झन' (पनपने, फलने-फूलने)से लेना होता है। ऋद्धियों के दस प्रकार होते हैं, और इनकी होती हैं चार भूमियां, चार पाद, आठ पद और सोलह मूल।

तदुपरांत प्रत्येक ऋद्धि का पृथक-पृथक विवेचन किया गया है।

(३) अभिसमयकथा

इसमें मार्ग की भावना, फल के साक्षात्कार, चित्तमलों के प्रहाण और धर्माभिसमय के बारे में चर्चा की गयी है।

(४) विवेककथा

इसमें आर्य अष्टांगिक मार्ग के आठ अंगों में से प्रत्येक के पांच विवेकों, पांच

विरागों, , पांच निरोधों, पांच अवसर्गों और बारह आश्रयों के बारे में चर्चा की गयी है, और तदुपरांत श्रद्धा-इंद्रिय, वीर्य-इंद्रिय, स्मृति-इंद्रिय, समाधि-इंद्रिय और प्रज्ञा-इंद्रिय के विवेकों, विरागों, निरोधों और आश्रयों के बारे में भी।

(५) चरियाक था

इसमें सर्वप्रथम इन आठ चर्याओं का विवेचन किया गया है – ईर्यापथ, आयतन, स्मृति, समाधि, ज्ञान, मार्ग, प्राप्ति और लोकार्थ।तदनंतर आठ-आठ के दो समूहों में सोलह अन्य चर्याओं का भी उल्लेख किया गया है।

(६) पाटिहारियक था

इसमें इन तीन प्रातिहार्यों का विवेचन किया गया है –ऋद्धि,आदेशना और अनुशासनी।

(७) समसीसक था

इसमें मृत्यु के साथ ही निर्वाण प्राप्त करनेसे संबंधित विषय प्रतिपादित किया गया है।

(८) सतिपट्ठानक था

इसमें यह दर्शाया गया है कि कोईभिक्षु किसप्रकारकायामें कायानुपश्यना, वेदनाओं में वेदनानुपश्यना, चित्त में चित्तानुपश्यना और धर्मों में धर्मानुपश्यना करता हुआ विहार करता है।

(९) विपस्सनाक था

इसमें प्रज्ञप्त कियागया है कि सभी संस्कारोंकोअनित्य एवं दु:ख, सभी धर्मों कोअनात्म, और निर्वाण कोभी सुख के रूप में अनुभव करनेपर भिक्षु सहिष्णु चित्तवृत्ति वाला होकर,सम्यक मार्ग में प्रवेश कर,स्रोतापत्ति, सकृदागामित्व, अनागामिता अथवा अरहत्व का साक्षात्कार कर लेता है।

तदनंतर यह दर्शाया गया है कि सहिष्णु चित्तवृत्ति काप्रतिलाभ चालीस प्रकार से होता है, और सम्यक मार्ग में प्रवेश भी चालीस प्रकारसे होता है। फिरइनमें से प्रत्येक का विवरण भी दिया गया है।

(१०) मातिक ाक था

इसके अंतर्गत कु छ शब्दों की व्याख्या की गयी है, यथा – 'निच्छात', 'मोक्ख-विमोक्ख', 'विज्जाविमुत्ति', 'अधिसील', 'अधिचित्त', 'अधिपञ्ञा', इत्यादि।

नेत्तिप्पक रण

इस ग्रंथ को 'नेत्तिप्पक रण' (अथवा 'नेत्ति') के नाम से इसलिए जाना जाता है कि यह सद्धर्म को भली प्रकार समझने के लिए 'नेतृत्व' (मार्गदर्शन) प्रदान क रता है।

इसके दो मुख्य भाग हैं:

(१) सङ्गहवार, तथा (२) विभागवार।

'विभागवार' के उप-विभाग हैं

(क) उद्देसवार, (ख) निद्देसवार, तथा (ग) पटिनिद्देसवार।

'पटिनिद्देसवार' के अंतर्गत उपलब्ध विषय-सामग्री का आगे वर्गीक रण है

१. हार-विभङ्ग

२. हार-सम्पात

३. नय-समुट्ठान, तथा

४. सासन-पट्ठान।

इन भागों, विभागों तथा वर्गीक रणों का आशय निम्न प्रकार से है

सङ्गहवार : समूचे ग्रंथ की समष्टिगत विषय-सूची

विभागवार : समष्टिगत विषय-सूची का विभिन्न वर्गों में विभाजन ।

उद्देसवार : विषय-वस्तु का संक्षिप्त परिचय

(विषय-वस्तु – सोलह हार : देसना, विचय, युत्ति, पदट्ठान, लक्खण, चतुब्यूह, आवट्ट, विभत्ति, परिवत्तन, वेवचन, पञ्ञत्ति, ओतरण, सोधन, अधिट्ठान, परिक्खार, समारोपन।)

पांच नय : नन्दियावट्ट, तिपुक्खल, सीहविक्कीळित, दिसालोचन, अङ्कुस।

अठारह मूल पद : अकुसल पद – तण्हा, अविज्जा, लोभ, दोस, मोह, सुभसञ्ञा, सुखसञ्ञा, निच्चसञ्ञा, अत्तसञ्ञा। कुसलपद –समथ, विपस्सना,

अलोभ, अदोस, अमोह, असुभसञ्ञा, दुक्खसञ्ञा, अनिच्चसञ्ञा, अनत्तसञ्ञा।)

* **निद्देसवार** : हारों तथा नयों की परिभाषाएं और इन्हें उपयोग में लेने की विधि

* **पटिनिद्देसवार** : हारों, नयों तथा मूल पदों का विस्तृत विवेचन

* **हार-विभङ्ग** : हारों का पृथक-पृथक विवेचन

* **हार-सम्पात** : हारों का समष्टिगत विवेचन

* **नय-समुट्ठान** : नयों का विवेचन

* **सासन-पट्ठान** : बुद्ध-शासन एवं मूल पदों का विवेचन।

उक्त विवरण से स्पष्ट होगा कि प्रस्तुत ग्रंथ में मुख्यतया 'हार', 'नय' तथा 'मूल पद' ही विवेचित हैं। अतः इनका संक्षिप्त परिचय दिया जाना समीचीन है।

• (१) **हार** (गुंथे हुए विषयों की मालाएं) – ये सोलह प्रकार के हैं।

१. देसना : बुद्ध की छः प्रकार की देशना –कामभोग प्राप्त हो जाने पर इनके आस्वाद (अस्साद) को दर्शाने वाली; कामभोग प्रहीण होने पर इनके दुष्परिणाम (आदीनव) को दर्शाने वाली; संसार से निकासी (निःसरण) का मार्ग दर्शाने वाली; श्रामण्य के लाभ (फल) को दर्शाने वाली; निर्वाण-प्राप्ति का साधन (उपाय) दर्शाने वाली; और नैतिक उद्देश्य (आणत्ति) दर्शाने वाली ।

२. विचय : सुत्त का गहरा विश्लेषण (पविचय)

३. युत्ति : युक्तियों (युत्ति) द्वारा धर्म का विश्लेषण कर उसके अर्थ को समझना

४. पदट्ठान : उपदिष्ट धर्म का नजदीकी कारण, पदस्थान (पदट्ठान)

५. लक्खण : किसी एक धर्म के कहे जाने पर वैसे ही लक्षण (लक्खण) वाले सभी धर्मों को समझ लेना

६. चतुब्यूह : व्यंजन से सुत्त की निरुक्ति, अभिप्राय, निदान तथा पूर्वापरसंधि रूपी चतुर्व्यूह (चतुब्यूह) की गवेषणा

७. **आवट्ट** : एक पदस्थान मिलने पर दूसरे पदस्थानों की भी खोज, और इनका प्रतिपक्ष में आवर्तन (आवट्ट)

८. **विभत्ति** : विविध प्रकार का विभाजन (विभत्ति)

९. **परिवत्तन** : कुशल धर्मों का अकुशल धर्मों में, और अकुशल धर्मों का कुशल धर्मों में, परिवर्तन (परिवत्तन)

१०. **वेवचन** : शब्दों के अन्य अनेक पर्यायवाची शब्दों (वेवचन) से सुत्त का अर्थ जानना

११. **पञ्ञत्ति** : एक ही धर्म को अनेक प्रकार से प्रस्तुत करने का ढंग

१२. **ओतरण** : प्रतीत्यसमुत्पाद, इंद्रिय, स्कंध, धातु तथा आयतनों के रूप में बुद्ध के मंतव्यों का विश्लेषण

१३. **सोधन** : गाथाओं में पूछे गये प्रश्नों के अशुद्ध होने पर उत्तर देते समय उनका शोधन (सोधन)

१४. **अधिट्ठान** : जिन धर्मों को पहले तो एकल, और फिर विभिन्नता से निर्दिष्ट किया गया हो, उन्हें वैसे ही धारण करना (अधिष्ठान)

१५. **परिक्खार** : जो धर्म जिस धर्म को उत्पन्न करे, उसे उसका परिष्कार (परिक्खार) जानना

१६. **समारोपन** : जिस किसी मूल से उत्पन्न धर्म, और जिन्हें बुद्ध ने एक अर्थ वाला बतलाया हो, उनका समारोपण (समारोपन)

• (२) **नय** (तात्पर्य का निर्णय करने की युक्तियां) –ये पांच प्रकार के हैं।

१. **नन्दियावट्ट** : सत्यों से युक्त कर, तृष्णा और अविद्या को शमथ और विपश्यना से ले जाने वाला नय

२. **तिपुक्खल** : अकुशल तथा कुशल धर्मों को मूलसहित यथार्थ, सत्य एवं असत्य के अभाव पर लाने वाला नय

३. **सीहविक्कीळित** : विपर्यासों से अधर्म, और इंद्रियों से सद्धर्म की ओर ले जाने वाला नय

४. दिसालोचन : व्याख्याओं में जहां-तहां विवेचन किये गये कुशल एवं अकुशल धर्मों का परीक्षण करने संबंधी नय

५. अङ्कुस : दिसालोचन के फलस्वरूप प्रकट होने वाले सारे कुशल एवं अकुशल धर्मों को समेटने वाला नय

- (३) **मूल पद** – इनकी कुल गणना अठारह है। इनके नामों का उल्लेख 'उद्देसवार' के अंतर्गत किया जा चुका है, जिनका आशय निम्न प्रकार से लिया जाना चाहिए

अकुशल मूल : १. तृष्णा, २. अविद्या, ३. लोभ, ४. द्वेष, ५. मोह, ६. शुभसंज्ञा, ७. सुखसंज्ञा, ८. नित्यसंज्ञा, तथा ९. आत्मसंज्ञा।

कुशल मूल : १. शमथ, २. विपश्यना, ३. अलोभ, ४. अद्वेष, ५. अमोह, ६. अशुभसंज्ञा, ७. दुःखसंज्ञा, ८. अनित्यसंज्ञा, तथा ९. अनात्मसंज्ञा।

- **'सासन-पट्ठान'** के अंतर्गत बुद्ध-वचनों को निम्नांकित सोलह मुख्य भागों में बांटा गया है

१. सङ्किलेसभागिय – चित्त-मलों का विवेचन करने वाले

२. वासनाभागिय – नैतिकता का विवेचन करने वाले

३. निब्बेधभागिय – प्रज्ञा द्वारा सत्य-बंधन का विवेचन करने वाले

४. असेखभागिय – अरहंतों की अवस्था का विवेचन करने वाले

५. संङ्किलेसभागिय एवं वासनाभागिय – १ वा २ के अनुरूप

६. सङ्किलेसभागिय एवं निब्बेधभागिय – १ वा ३ के अनुरूप

७. सङ्किलेसभागिय एवं असेखभागिय – १ वा ४ के अनुरूप

८. सङ्किलेसभागिय, निब्बेधभागिय एवं असेखभागिय – १, ३ वा ४ के अनुरूप

९. सङ्किलेसभागिय, वासनाभागिय एवं निब्बेधभागिय – १, २ वा ३ के अनुरूप

१०. वासनाभागिय एवं निब्बेधभागिय – २ वा ३ के अनुरूप

११. तण्हासङ्किलेसभागिय –तृष्णा-पक्ष से चित्त-मलों का विवेचन करनेवाले

१२. **दिट्ठिसङ्किलेसभागिय** –दृष्टि-पक्ष से चित्त-मलों का विवेचन करने वाले

१३. **दुच्चरितसङ्किलेसभागिय** –दुराचार पर आधारित चित्त-मलों का विवेचन करने वाले

१४. **तण्हावोदानभागिय** – तृष्णा की विशुद्धि का विवेचन करने वाले

१५. **दिट्ठिवोदानभागिय** – (मिथ्या-) दृष्टि की विशुद्धि का विवेचन करने वाले

१६. **दुच्चरितवोदानभागिय** –दुराचरण की विशुद्धि का विवेचन करने वाले

[इनके अतिरिक्त निम्नांकित पदों का विवेचन भी किया गया है –लोकिय, लोकुत्तर तथा लोकिय एवं लोकुत्तर; सत्ताधिट्ठान, धम्माधिट्ठान तथा सत्ताधिट्ठान एवं धम्माधिट्ठान; ञाण, ञेय्य तथा ञाण एवं ञेय्य; दस्सन, भावना तथा दस्सन एवं भावना; सकवचन, परवचन तथा सकवचन एवं परवचन; कुसल, अकुसल तथा कुसल एवं अकुसल; अनुञ्ञात, पटिक्खित तथा अनुञ्ञात एवं पटिक्खित; इत्यादि।]

प्रायोगिक पक्ष

पूर्व में प्रस्तुत की गयी विषय-वस्तु के कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं, जिससे 'नेत्ति' का प्रायोगिक पक्ष भी यत्किंचित उजागर हो सके।

हार

देसनाहारविभङ्ग : बुद्ध की छः प्रकार की देशना

(१) **अस्साद (आस्वाद) :** "यदि भोग-विलास करने वाले की इच्छा पूरी हो जाती है, तो वह व्यक्ति अवश्य ही अपनी इच्छा पूरी हो जाने से प्रसन्न मन वाला हो जाता है।"

(२) **आदीनव (दुष्परिणाम) :** "यदि इच्छा करने वाले तृष्णा के वशीभूत हुए उस व्यक्ति को भोग-विलास जाते रहते हैं, तो वह तीर-चुभे के समान व्यथित होता है।"

(३) **निःसरण (निकासी)** : "सर्प के सिर को पैरों से कुचलने के समान जो

भोग-विलास को त्याग देता है, वह इस संसार में जागरूक बना रह कर विषैली तृष्णा की परिधि को लांघ जाता है।"

(४) **फल (लाभ) :** "निश्चय ही धर्म धर्माचरण करनेवाले की रक्षा करता है, जैसे वर्षाकाल में बड़ा छाता। अच्छी तरह अभ्यास किये हुए धर्म का यह शुभ परिणाम होता है कि धर्माचरण करने वाला दुर्गति को प्राप्त नहीं होता है।)

(५) **उपाय (साधन) :** "जब कोई प्रज्ञापूर्वक यह देख लेता है कि सारे संस्कार अनित्य हैं, सारे संस्कार दुःख हैं और सारे धर्म अनात्म हैं, तब उसके दुःखों का निर्वेदन हो जाता है – यह विशुद्धि का मार्ग है।"

(६) **आणत्ति (नैतिक उद्देश्य)** : "जैसे आंख वाला व्यक्ति पराक्रम करते समय विषमता को दूर रखता है, वैसे ही जीवलोक में ज्ञानी व्यक्ति पापों को दूर रखे।"

पदट्ठानहारविभङ्ग

प्रमोद प्रीति का पदस्थान है, प्रीति प्रश्रब्धि का, प्रश्रब्धि सुख का, सुख समाधि का, समाधि यथाभूतज्ञानदर्शन का, यथाभूतज्ञानदर्शन निर्वेद का, निर्वेद वैराग्य का और वैराग्य विमुक्ति का।

परिवत्तनहारविभङ्ग

सारे संस्कारों में अशुभानुपश्यी हो विहार करनेवाले भिक्षु की ही शुभसंज्ञा का प्रहाण हो जाता है, दुःखानुपश्यी हो विहार करनेवाले की सुखसंज्ञा का प्रहाण हो जाता है, अनित्यानुपश्यी हो विहार करनेवाले की नित्यसंज्ञा का प्रहाण हो जाता है और अनात्मानुपश्यी हो विहार करने वाले की ही आत्मसंज्ञा का प्रहाण हो जाता है।

वेवचनहारविभङ्ग

'मनिंद्रिय', 'मनोधातु', 'मनायतन', 'विजानना' – ये मन के 'वेवचन' (पर्यायवाची शब्द) हैं।

पञ्ञत्तिहारविभङ्ग

वह इन्हें, यथार्थतः, प्रज्ञापूर्वक जानता है – 'यह दुःख है', 'यह दुःख का समुदय है', 'यह दुःख का निरोध है', 'यह दुःख का निरोध प्राप्त कराने वाला मार्ग है'।

यह है सत्यों की प्रतिवेध-प्रज्ञप्ति, दर्शन-भूमि की निक्षेप-प्रज्ञप्ति, मार्ग की भावना-प्रज्ञप्ति और स्रोतापत्ति-फल की साक्षात्कार-प्रज्ञप्ति।

अधिट्ठानहारविभङ्ग

'दुःख'

यह है धर्म का 'एकत्व' निर्देश। 'दुःख' क्या है? दुःख है जन्म, बुढ़ापा, व्याधि, मरण, अप्रियों से मिलाप, प्रियों से बिछोह, इष्ट का प्राप्त न होना; संक्षेप में पांचों उपादान-स्कंध। – यह है प्रासंगिक धर्म का 'विभिन्नता से' निर्देश।

परिक्खारहारविभङ्ग

जो धर्म जिस धर्म को उत्पन्न करे, वह होता है उसका 'परिक्खार' (परिष्कार)। 'परिक्खार' का लक्षण होता है 'उत्पादकत्व'।

उत्पादन करने वाले दो धर्म हैं – 'हेतु' तथा 'पच्चय' (प्रत्यय)। पहले का लक्षण होता है असाधारण और दूसरे का साधारण।

दृष्टांत

'अंकुर' के फूटने में 'बीज' की भूमिका है असाधारण और 'पृथ्वी तथा जल' की साधारण। अतः इस प्रकरण में 'बीज' (अर्थात, 'अंकुर का अपना स्वभाव है') है 'हेतु'। और 'पृथ्वी तथा जल' हैं 'पच्चय'।

हारसम्पात (युत्ति०, पदट्ठान०, आवट्ट०, वेवचन०)

इन चारों को निम्नांकित गाथा के आधार पर समझाया गया है

"तस्मा रक्खितचित्तस्स, सम्मासङ्कप्पगोचरो। सम्मादिट्ठिपुरेक्खारो, ञत्वान उदयब्बयं। थिनमिद्धाभिभू भिक्खु, सब्बा दुग्गतियो जहे"ति॥

युत्तिहारसम्पात

इस गाथा के अंशों को ऐसे युक्त करना चाहिए – 'इसलिए चित्त की रक्षा करने वाला ऐसा होगा, जिसकी गोचर भूमि सम्यक संकल्प होगी; जिसकी गोचरभूमि सम्यक संकल्प होगी, वह सम्यक दृष्टि वाला होगा; सम्यक दृष्टि को आगे कर विहार करने वाला उदय-व्यय का प्रतिवेधन कर लेगा; और उदय-व्यय का प्रतिवेधन करने वाला सारी दुर्गतियों को लांघ जायगा'।

पदट्ठानहारसम्पात

'तस्मा रक्खितचित्तस्स' – यह तीन सुचरितों का पदस्थान है। 'सम्मासङ्कप्पगोचरो' – यह शमथ का पदस्थान है। 'सम्मादिट्ठिपुरेक्खारो' – यह विपश्यना का पदस्थान है। 'ञत्वान उदयब्बयं' – यह दर्शनभूमि का पदस्थान है। 'थिनमिद्धाभिभू भिक्खु' – यह वीर्य का पदस्थान है। 'सब्बा दुग्गतियो जहे' – यह भावना का पदस्थान है।

आवट्टहारसम्पात

'तस्मा रक्खितचित्तस्स सम्मासङ्कप्पगोचरो' – यह शमथ है। 'सम्मादिट्ठिपुरेक्खारो' – यह विपश्यना है। 'ञत्वान उदयब्बयं' – यह दुःख का परिज्ञान है। 'थिनमिद्धाभिभू भिक्खु' – यह समुदय का प्रहाण है। 'सब्बा दुग्गतियो जहे' – यह निरोध है।

वेवचनहारसम्पात

'तस्मा रक्खितचित्तस्स' में 'चित्त' के वेवचन (पर्यायवाची शब्द) हैं 'मन', 'विञ्ञाण', 'मनिंद्रिय', 'मनायतन', 'विजानना' तथा 'विजानितत्त' ।

'सम्मासङ्कप्पगोचरो' के वेवचन हैं 'नेक्खम्मसङ्कप्प', 'अब्यापादसङ्कप्प' तथा 'अविहिंसासङ्कप्प'।

'सम्मादिट्ठिपुरेक्खारो' के वेवचन हैं 'सम्मादिट्ठि', 'पञ्ञासत्थ', 'पञ्ञाखग्ग', 'पञ्ञापज्जोत', 'पञ्ञापतोद' तथा 'पञ्ञापासाद'।

नयसमुट्ठान

'सीहविक्कीळित' तथा 'दिसालोचन'

'सीह' (सिंह) होते हैं बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध और राग-द्वेष-मोह का विनाश किये हुए श्रावक। उनकी 'विक्कीळित' (विक्रीडित, क्रीडा) होती है भावना, साक्षात्कार तथा विनाश। 'विक्कीळित' है (श्रद्धा आदि) इंद्रियों का पनपना और बुराइयों का उखड़ना। जब कि इंद्रियों की गोचर भूमि है सद्धर्म, बुराइयों की है कामुकता। यह कहलाती है 'सीहविक्कीळित' तथा 'दिसालोचन' नयों की भूमि।

सङ्किलेसभागिय सुत्त

"जैसे सेंध लगाते पकड़ा गया चोर अपने ही कर्मसे बांधा जाता और मारा जाता है, वैसे ही यह प्रजा यहां मृत्यु को प्राप्त हो, परलोक में अपने ही कर्मसे बांधी जाती और मारी जाती है।"

वासनाभागिय सुत्त

"जो सुख चाहने वाले प्राणियों को लाठी से हिंसा नहीं करता है, वह अपना सुख चाहने पर मरणोपरांत सुख ही प्राप्त करता है।"

निब्बेधभागिय सुत्त

"जब डट कर ध्यान करनेवाले ब्राह्मण के समक्ष धर्म प्रकट होते हैं, तब इसके सारे संदेह दूर हो जाते हैं, क्योंकि वह इन धर्मों को हेतु-सहित जान लेता है।"

असेखभागिय सुत्त

"यह छोटी उम्र वाला भिक्षु है। यह उत्तम पुरुष है। यह सेना-सहित मार को जीत कर अंतिम देह धारण किये हुए है।"

सङ्किलेसभागिय, वासनाभागिय तथा निब्बेधभागिय सुत्तः कर्म चार प्रकार के होते हैं – 'कण्ह कण्हविपाक', 'सुक्क सुक्कविपाक', 'कण्हसुक्क कण्हसुक्कविपाक' और 'अकण्ह-असुक्क अकण्हअसुक्कविपाक' (अर्थात, 'कृष्ण और कृष्ण परिणाम वाले', 'शुक्ल और शुक्ल परिणाम वाले', 'कृष्ण-शुक्ल और कृष्ण-शुक्ल परिणाम वाले' और 'अकृष्ण-अशुक्ल तथा अकृष्ण-अशुक्ल परिणाम वाले'।)

इनमें से जो कर्म होता है 'कण्ह कण्हविपाक' अथवा 'कण्हसुक्क कण्हसुक्कविपाक', वह होता है 'सङ्किलेस'। जो कर्म होता है 'सुक्क सुक्कविपाक', वह वासना। जो कर्म होता है 'अकण्ह-असुक्क अकण्हअसुक्कविपाक', वह होता है उत्तम श्रेष्ठ, कर्मों के क्षय का हेतु – 'निब्बेध' (निर्वेध)।

तण्हावोदानभागिय सुत्त

इसका निर्देश 'समथ' (शमथ) से किया जाना चाहिए।

दिट्ठिवोदानभागिय सुत्त

इसका निर्देश 'विपस्सना' (विपश्यना) से किया जाना चाहिए।

दुच्चरितवोदानभागिय सुत्त

इसका निर्देश 'सुचरित' (सदाचरण) से किया जाना चाहिए।

विशिष्ट पदों का विवेचन

'ञाण', 'ञेय्य' तथा 'ञाण' एवं 'ञेय्य' : 'सारे संस्कार अनित्य हैं' – यह 'ञेय्य' (ज्ञेय) है। 'जब प्रज्ञापूर्वक देखता है' – यह 'ञाण' (ज्ञान) है। 'तब दुःख का निर्वेदन हो जाता है, यह विशुद्धि का मार्ग है' – यह 'ञाण' (ज्ञान) और 'ञेय्य' (ज्ञेय) है।

'कुसल', 'अकुसल' तथा 'कुसल' एवं 'अकुसल' : तीन 'कुसलमूल' हैं : अलोभ, अदोस तथा अमोह – यह है 'कुसल' (कुशल)मूल।

तीन 'अकुसलमूल' हैं : लोभ, दोस तथा मोह – यह है 'अकुसल' (अकुशल)मूल।

"जो जैसा बीज बोता है, वह वैसा फल ले जाता है – कल्याणकारी कल्याणकारकऔर पापकारी पापपूर्ण।" इसमें 'कल्याणकारीकल्याणकारक' – यह है 'कुसल' और 'पापकारी पापपूर्ण' – यह है 'अकुसल'। इस प्रकार यह दृष्टांत है 'कुसल' तथा 'अकुसल' का।

'अनुञ्ञात', 'पटिक्खित्त' तथा 'अनुञ्ञात' एवं 'पटिक्खित्त' : "जैसे कोई भ्रमर पुष्प के वर्ण और गंध को बिना हानि पहुँचाये, रस लेकर चला जाता है, ऐसे ही मुनि ग्राम में विचरण करे।" – यह 'अनुञ्ञात' (अनुज्ञात) है।

किसी ने कहा : "कोई पुत्र के समान प्यारा नहीं होता, गाय के समान धन नहीं होता, सूर्य के समान आभा नहीं होती, जलों में समुद्र सबसे बढ़ कर है।"

परंतु भगवान ने इसके प्रतिवाद में कहा : "कोई अपने समान प्यारा नहीं होता, धान्य के समान धन नहीं होता, प्रज्ञा के समान आभा नहीं होती, जलों में वृष्टि सबसे बढ़ कर है।" – इससे पहला कथन 'पटिक्खित्त' (प्रतिक्षिप्त) हुआ।

"सब पापों का न करना, कुशल कर्मों का संचय करना और चित्त को निर्मल करते रहना – यह बुद्धों की शिक्षा है।" – इसमें 'पटिक्खित्त' है 'सब पापों का न

करना', और 'अनुञ्ञात' है 'कुशल कर्मों का संचय करना' । इस प्रकार यह दृष्टांत है 'अनुञ्ञात' एवं 'पटिक्खित्त' का।

इस ग्रंथ के अंत में यह उल्लेख किया गया है कि इसे आयुष्मान महाकच्चायन (महाकात्यायन) ने कहा, भगवान ने इसका अनुमोदन किया और मूल सङ्गीति में इसका संगायन हुआ।

पेटकोपदेस

यह ग्रंथ भी 'नेत्तिपकरण' के समान ही सद्धर्म को भली प्रकार समझने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है। 'पेटकोपदेस' का अर्थ ही है 'पिटक-संबंधी उपदेश (अथवा शिक्षा)'।

'नेत्तिपकरण' तथा 'पेटकोपदेस' – इन दोनों की विषय-वस्तु एवं शैली लगभग एक-समान है। दोनों में पाये जाने वाले बहुत से उदाहरण भी एक जैसे हैं। फिर भी 'पेटकोपदेस' की यह विशेषता है कि इनमें विषय-वस्तु को मुख्यतया चार आर्य सत्यों की दृष्टि से विन्यस्त किया गया है। किसी-किसी विषय का विवेचन भी बहुत विस्तार से किया गया है, यथा 'हारसम्पातभूमि' के अंतर्गत 'झान' (ध्यान) का।

इस ग्रंथ के अंत में इसके रचयिता जंबुवनवासी स्थविर महाकच्चायन दर्शाये गये हैं।

मिलिन्दपञ्ह

'मिलिन्दपञ्हो' का अर्थ है 'मिलिन्द के प्रश्न'। मिलिन्द का वास्तविक नाम था इुत्रह्यद्यप्र्, जि मूलतः यवन देश का शासक था। बाद में यह भारतवर्ष के पश्चिमोत्तरीय भूभाग पर आधिपत्य जमा कर यहां का शासक बन गया। इसकी राजधानी सागल थी।

यह राजा बहुत से शास्त्रों में पारंगत और एक अत्यंत कुशल तार्किक था। इसने उस समय के सभी लव्धप्रतिष्ठ श्रमणों व ब्राह्मणों को वाद-विवाद में पछाड़ रखा था, और उसे ऐसा लगने लगा था – 'अरे, तुच्छ है जंबूद्वीप! झूठ-मूठ ही इसका इतना नाम है। यहां कोई भी ऐसा श्रमण या ब्राह्मण नहीं है, जो मेरे साथ संलाप करके, मेरी शंकाओं का निवारण कर सके।

अंततः इसका शास्त्रार्थ अरहंत-अवस्था-प्राप्त स्थविर नागसेन से हुआ, जिन्होंने इसके सभी प्रश्नों का समाधान कर दिया। उन्हीं प्रश्नोत्तरों का संग्रह-ग्रंथ कहलाता है –'मिलिन्दपञ्हो'।

इस ग्रंथ की 'निगमन कथा' के अनुसार यह रचना छः कांडों और बाईस वर्गों में विभाजित है, और इसमें राजा मिलिन्द द्वारा पूछे गये प्रश्नों की कुल संख्या तीन सौ चार है।

छः कांड हैं – (१) बाहिरकथा (पुब्बयोगादि), (२) मिलिन्दपञ्ह (लक्खणपञ्ह), (३) मिलिन्दपञ्ह (विमतिच्छेदनपञ्ह), (४) मेण्डकपञ्ह, (५) अनुमानपञ्ह, तथा (६) ओपम्मकथापञ्ह। इस ग्रंथ की कथावस्तु का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

(१) बाहिरकथा (पुब्बयोगादि)

'बाहिरकथा' के अंतर्गत नागसेन और मिलिन्द के पूर्वजन्मों से लेकर इस जन्म में दोनों के प्रथम समागम तक की कथावस्तु प्रकाश में लायी गयी है।

(२) मिलिन्दपञ्ह (लक्खणपञ्ह)

भदंत नागसेन के पास पहुँच कर राजा मिलिन्द ने उनसे प्रश्न किया –'भंते!

आप किस नाम से जाने जाते हैं?' भदंत ने उत्तर दिया –'महाराज! मैं नागसेन नाम से जाना जाता हूं, हालांकि यह संज्ञा व्यवहार-भर के लिए है, और यथार्थ में ऐसा कोई पुरुष नहीं है।'

यह सुनते ही राजा ने भदंत पर प्रश्नों की झड़ी लगा दी –'यदि यथार्थ में ऐसा कोई पुरुष नहीं है, तो आपको भिक्षादि कौन देता है? कौन उसका योग करता है? कौन शील की रक्षा करता है? कौन ध्यान-भावना का अभ्यास करता है? कौन निर्वाण का साक्षात्कार करता है? यदि आपको कोई मार डाले, तो यह किसी का मारना भी नहीं हुआ? ऐसे ही, न आपके कोई आचार्य हुए, न उपाध्याय, और न आपकी उपसंपदा हुई। क्या आपका रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान पृथक-पृथक, या एक-साथ, नागसेन हैं'?

इस पर 'रथ' का उदाहरण देते हुए भदंत ने सिद्ध कर दिया कि जैसे अवयवों के आधार पर ही रथ की संज्ञा होती है, वैसे ही स्कंधों के होने से ही 'सत्त्व' की संज्ञा होती है, यथार्थ में कोई सत्त्व नहीं होता।

तदनंतर राजा द्वारा बहुत से प्रश्न किये गये, जिनका उत्तर देते हुए भदंत ने अनेक प्रकार के स्पष्टीकरण दिये, जिनमें से कुछेक निम्न प्रकार से हैं

* परिनिर्वाण प्राप्त करना हमारा परम उद्देश्य है, जिससे नया जन्म न हो।

* यदि किसी के चित्त में मैल बना रहता है, तो वह जन्म ग्रहण करता है; यदि मैल नहीं बना रहता है, तो वह जन्म नहीं ग्रहण करता है।

* कुशल धर्म हैं – शील, श्रद्धा, वीर्य, स्मृति और समाधि। ये सभी धर्म, ज्ञान-सहित, एक ही प्रयोजन सिद्ध करते हैं – दुःखों का विनाश।

* एक जन्म के अंतिम विज्ञान के लय होते ही दूसरे जन्म का प्रथम विज्ञान उठ खड़ा होता है; ऐसी परिस्थिति में न तो वही जीव बना रहता है, और न कोई दूसरा ही हो जाता है।

* ज्ञान और प्रज्ञा एक ही होते हैं। ज्ञान उत्पन्न होते ही मोह (अज्ञान) दूर हो जाता है, जैसे अंधेरी कोठरी में दीपक जलाने से अंधेरा दूर हो जाता है।

* अरहंत अवस्था को प्राप्त हुआ व्यक्ति शरीर में होने वाली वेदनाओं को तो अनुभव करता है, पर चित्त में होने वाली वेदनाओं को नहीं।

* यद्यपि मृत्यु के साथ एक नाम-रूप का लय होता है और जन्म के साथ दूसरा नाम-रूप उठ खड़ा होता है, किंतु यह भी होता उसी से है। इसी कारणवश मृत्यु को प्राप्त होने वाला व्यक्ति अपने पाप-कर्मों से मुक्त नहीं हो जाता।

* अतीत काल का मूल अविद्या है। अविद्या के कारण संस्कार उत्पन्न होते हैं, संस्कारों के कारण विज्ञान, विज्ञान के कारण नाम-रूप, नाम-रूप के कारण छह इंद्रियां, छह इंद्रियों के कारण स्पर्श, स्पर्श के कारण वेदना, वेदना के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण उपादान, उपादान के कारण भव, भव के कारण जन्म और जन्म हो जाने के कारण बुढ़ापा, मृत्यु, शोक ,विलाप, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार कालके आदि का पता नहीं चलता है।

* ऐसे कोई संस्कार नहीं होते जो न होकर उत्पन्न होते हों; वही संस्कार उत्पन्न होते हैं जिनका सिलसिला पहले से चला आ रहा होता है।

* चक्षु और रूपों के होने से चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है। उसके उत्पन्न होने के साथ ही स्पर्श, वेदना, संज्ञा, चेतना, एकाग्रता, जीवितिंद्रिय और मनसिकार –ये धर्म उत्पन्न होते हैं; ऐसे ही अन्य इंद्रियों और उसके विषयों को लेकर भी ये धर्म उत्पन्न होते हैं। यहां कोई जानने वाली आत्मा नहीं होती है।

* जहां चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है वहां मनोविज्ञान भी उत्पन्न होता है। जहां मनोविज्ञान होता है वहां स्पर्श भी होता है, वेदना भी, संज्ञा भी, चेतना भी, वितर्क भी, विचार भी। भले ही स्पर्श, वेदना आदि के अपने-अपने लक्षण हैं, फिर भी इन धर्मों के एक साथ मिल जाने पर उन्हें अलग-अलग बांट कर इस प्रकार नहीं दिखलाया जा सकता –"यह रहा स्पर्श, यह वेदना, यह संज्ञा, यह चेतना, यह विज्ञान, यह वितर्क और यह विचार!"

(३) मिलिन्दपञ्ह (विमतिच्छेदनपञ्ह)

इसके अंतर्गत भी राजा मिलिन्द के प्रश्नों के उत्तर में भदंत नागसेन द्वारा प्रस्तुत किये गये कुछेक समाधान नीचे दिये जा रहे हैं।

* जैसे बीजों की विविधता के कारण पेड़ भी एक-जैसे नहीं होते हैं, ऐसे ही मनुष्यों के कर्म नाना प्रकार के होने से मनुष्य भी एक-जैसे नहीं होते हैं।

* निरोध (संपूर्ण उपशमन) ही निर्वाण होता है।

* अनुपाधिशेष निर्वाण धातु से परिनिर्वाण पाये हुए भगवान को

दिखलाया नहीं जा सकता है; उनकी धर्म-काया से ही उन्हें दिखलाया जा सकता है (क्योंकि धर्म-देशना उन्हीं से प्राप्त हुई थी।)

* भगवान सर्वज्ञ और सर्वद्रष्टा होने पर भी उचित समय आने पर ही श्रावकों को शिक्षापद का उपदेश करते थे, असमय पर नहीं; जैसे सभी औषधों का जानकार वैद्य भी बीमार पड़ने पर ही औषध देता है, बिना बीमार पड़े नहीं।

* 'सराग' और 'वीतराग' में यही भेद होता है कि एक तृष्णा में डूबा रहता है और दूसरा नहीं।

* यहां पैदा होकर यहीं मर जाना; यहां मर कर अन्यत्र पैदा होना, और वहां पैदा होकर वहीं मर जाना; वहां मर कर कहीं और पैदा हो जाना – इसे कहते हैं 'संसार'।

* 'स्मृति' इतने प्रकार से उत्पन्न होती है – स्वयं की अभिज्ञा से; बाहर की याद से; किसी बड़ी बात के घटने से; सुखद प्रसंग याद आने से; दुःखद प्रसंग याद आने से; किन्हीं पदार्थों में समानता अथवा असमानता देखने से; दूसरे के कहने से; किसी लक्षण को देखने से; भूली-बिसरी बात को याद करने का प्रयत्न करने से; मुद्रा से; गणना से; कंठस्थ कर लेने से; भावना के बल से; पुस्तक को देखने से; धरोहर में रखी हुई वस्तु को देखने से; और किसी पूर्वानुभव के कारण।

* काटने का काम प्रज्ञा करती है; प्रज्ञा को काटने वाला दूसरा कुछ नहीं है।

(४) **मेण्डक पञ्ह**

इस कांड को यह नाम देने का यह कारण है कि इसमें उठाये गये प्रश्नों की तुलना 'मेण्डक' (भेड़े) के सींगों से की जा सकती है। जैसे ये सींग एक जैसे पैने होते हैं, वैसे ही ये प्रश्न भी देखने में परस्पर-विरोधी और द्विविधात्मक प्रतीत होते हैं। भदंत नागसेन ने इन प्रश्नों का बड़ी कुशलता से उत्तर देकर इनमें समन्वय स्थापित किया है।

इस प्रकार के कुछ द्विविधाजनक प्रश्न नीचे दिये गये हैं। –भगवान ने कहा: 'आनन्द! अब यह सद्धर्म पांच सौ वर्ष तक टिकेगा।' फिर अपने परिनिर्वाण के समय सुभद्द परिव्राजक को कहा: 'यदि भिक्षु सम्यक प्रकार से विहार करें, तो यह लोक भी अरहंतों से शून्य न हो।'

(राजा मिलिन्द को इनमें यह विरोधाभास लगा कि यदि तथागत के कथनानुसार सद्धर्म का पांच सौ वर्ष तक ही टिका रहना है तो उनका यह वचन सही प्रतीत नहीं होता कि यह लोक अरहंतों से शून्य नहीं भी हो सकता।और यदि उन्होंने यह कहा है कि यह लोक अरहंतों से शून्य नहीं भी हो सकता, तो उनका यह कथन सही प्रतीत नहीं होता कि सद्धर्म पांच सौ वर्ष ही टिकेगा।)

– यह कहा जाता है कि तथागत के लिए जो कुछ करणीय था वह सब बोधिवृक्ष के नीचे पूरा हो गया था, और इससे परे उनके लिए कुछ करणीय नहीं बचा था। फिर भी यह देखा जाता है कि उन्होंने समाधि लगाने के लिए तीन माह का एकांतवास किया।

(विरोधाभास : यदि तथागत ने बोधिवृक्ष के नीचे अपना सारा करणीय कर लिया था, तो समाधि लगाने के लिए तीन माह का एकांतवास क्यों किया ? और यदि उन्होंने सचमुच समाधि लगाने के लिए तीन माह का एकांतवास किया, तो यह बात सही नहीं प्रतीत होती कि उन्होंने बोधिवृक्ष के नीचे ही अपना सारा करणीय कर लिया था।)

– भगवान ने कहा : 'मैं स्वयं जानकर ही धर्म का उपदेश करता हूं, बिना जाने नहीं।' फिर विनय-प्रज्ञप्ति के समय यह भी कहा : 'आनन्द! मेरे उठ जाने के बाद यदि संघ उचित समझे तो छोटे-मोटे नियमों को छोड़ सकता है'।

(विरोधाभास : भगवान ने स्वयं जान कर ही धर्म का उपदेश देना बतलाया है, और यह भी कहा है कि यदि संघ उचित समझे तो छोटे-मोटे नियमों को छोड़ सकता है। इससे ऐसा आभास होता है कि भगवान ने छोटे-मोटे नियमों को स्वयं जाने बिना ही प्रज्ञप्त किया था, वर्ना संघ को इन्हें छोड़ देने के लिए अनुमति क्यों देते ? अतः भगवान के दोनों कथनों में से कोई एक तो सही नहीं है।)

– भगवान ने कहा : 'सभी लोग दंड से कांपते हैं, सभी को मृत्यु से भय लगता है।' फिर उन्होंने यह भी कहा : 'अरहंत सारे भयों से पार चला जाता है।'

(विरोधाभास : यदि भगवान का पहला कथन सत्य है तो दूसरा सही नहीं लगता, और यदि दूसरा कथन सत्य है तो पहला सही नहीं लगता।)

– भगवान ने कहा : 'न तो अंतरिक्ष में, न समुद्र के मध्य में, और न ही पर्वतों की कंदराओं में पैठ कर, संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां स्थित होकर कोई मृत्यु के फंदे से बच सके।' दूसरी ओर भगवान ने 'परित्तों'

(परित्राणों) का भी उपदेश दिया है, यथा – रतनसुत्त, मेत्तसुत्त, खन्धपरित्त, मोरपरित्त, आदि।

(विरोधाभास : यदि भगवान का पहला कथन सही है कि कोई व्यक्ति मृत्यु के फंदे से नहीं बच सकता, तो 'परित्त'-कर्म निष्फल हुए; और यदि 'परित्त'-कर्म सार्थक हैं और इनसे मृत्यु से बचाव होता है, तो भगवान का पहला कथन सही नहीं ठहरता कि कोई व्यक्ति मृत्यु के फंदे से नहीं बच सकता।)

– यह कहा जाता है कि बुद्ध को चीवर, पिंडपात, शयनासन, पथ्य, औषधादि परिष्कार सदैव प्राप्त हो जाते थे, और साथ ही यह भी कहा जाता है कि वे पञ्चसाल नामक ब्राह्मणों के ग्राम में भिक्षा के लिए प्रवेश कर कुछ भी प्राप्त किए बिना, धुले-धुलाये पात्र को लिए हुए, वापस लौट आये। (विरोधाभास : स्पष्ट है।)

– भगवान ने कहा : 'आनन्द! तथागत के मन में ऐसा नहीं आता कि मैं ही भिक्षु-संघ का संचालन करता हूं, या भिक्षु-संघ मेरे उद्देश्य से है।' उधर मेत्तेय भगवान के स्वाभाविक गुणों को दर्शाते हुए उन्होंने यह भी कहा : 'वे हजारों भिक्षु-संघों का संचालन करेंगे, जैसे मैं अभी सैकड़ों भिक्षु-संघों का संचालन कर रहा हूं।' (विरोधाभास : स्पष्ट है।)

– भगवान ने कहा : 'आनन्द! तुम लोग तथागत की शरीर-पूजा में मत लगो।' फिर उन्होंने यह भी कहा : 'उस पूजनीय की धातु को पूजो, ऐसा करते हुए यहां से स्वर्ग को जाओगे।' (विरोधाभास : स्पष्ट है।)

– भगवान ने कहा : 'जान बूझ कर झूठ बोलने वाले को पाराजिक दोष लगता है।' (पाराजिक दोष के कारण भिक्षु का भिक्षुभाव चला जाता है ।) फिर यह भी कहा : 'जान बूझ कर झूठ बोलने में थोड़ा दोष लगता है, जिसे किसी दूसरे भिक्षु के सामने स्वीकार कर लेना चाहिए।' (विरोधाभास : स्पष्ट है।)

– भगवान ने कहा : 'भिक्षुओ! मैत्री-चेतोविमुक्ति की भावना करने से ग्यारह प्रकार के शुभ परिणामों की आशा रखनी चाहिए।' (इन शुभ परिणामों में एक शुभ परिणाम यह भी है कि ऐसे व्यक्ति पर अग्नि, विष तथा शस्त्र का प्रभाव नहीं होता।) फिर यह भी कहा जाता है कि मैत्री-विहार करने वाले साम कुमार के मृगों के साथ वन में विचरण करते हुए एक दिन पीळियक्ख नामक राजा के विष

में बुझाये बाण के लग जाने से वे वहीं पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। (विरोधाभास : स्पष्ट है।)

–भगवान ने कहा: 'मेल-मिलाप से भय उत्पन्न होता है, ठिकाना होने से मैल जागता है। ठिकाना न होना और मेल-मिलाप का अभाव –यह मुनि का चिंतन है।' फिर भगवान ने यह भी कहा: 'सुंदर विहार बनाये और उनमें विद्वानों को बसाये।' (विरोधाभास : स्पष्ट है।)

–भगवान ने कहा: 'उठे, प्रमाद न करे, भोजन के विषय में संयत हो।' फिर यह भी कहा: 'उदायि! मैं कभी तो इस पात्र को पूरा भर कर खाता हूं, और कभी इससे भी अधिक'। (विरोधाभास : स्पष्ट है।)

–भगवान ने कहा: 'भिक्षुओ! अर्हत सम्यक संबुद्ध उस मार्ग का पता लगाते हैं जो दूसरों को मालूम नहीं रहता।' फिर उन्होंने यह भी कहा: 'मैंने उस सनातन मार्ग को देख लिया है जिस पर पहले के सम्यक संबुद्ध चलते आये हैं।' (विरोधाभास : स्पष्ट है।)

इस कांड में ऐसे प्रश्नों के समाधान तो मिलते ही हैं, इनके अतिरिक्त भी बहुत से महत्त्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया है, यथा

धार्मिक मंत्रणा करने के अयोग्य स्थान; धार्मिक मंत्रणा करने के अयोग्य व्यक्ति; गुप्त विषयों को प्रकट कर देने वाले व्यक्ति; बुद्धि पकने के कारण; उपासक के गुण; सात प्रकार के चित्त; चित्त को कमजोर बनाने वाली बातें; पाप और पुण्य में कौन बलवान, कौन कमजोर; अनजाने में किये गये पाप-पुण्य का फल; दु:ख-चर्या के दोष; संसार के बंधन; यक्षों का अस्तित्व; मृत्यु के कारण; अकालमृत्यु; आत्म-हत्या; निर्वाण-विषयक; स्वप्न-विषयक; दान-विषयक (जैसे, दान कैसे मांगा जाता है, दान न करने योग्य वस्तुएं, मृतकों के नाम पर दान देने का फल); इत्यादि।

(५) अनुमानपञ्ह

इस कांड में राजा मिलिन्द भदंत नागसेन से पूछता है : 'क्या आपने बुद्ध को देखा है?' "नहीं, महाराज!" "क्या आपके आचार्यों ने बुद्ध को देखा है?" "नहीं, महाराज!" "यदि न तो आपने बुद्ध को देखा है और न ही आपके आचार्यों ने, तो मालूम होता है कि बुद्ध हुए ही नहीं, उनके होने का कोई प्रमाण नहीं है।

इस पर भदंत नागसेन ने कहा कि 'धर्म' के अस्तित्व से ही 'बुद्ध' के अस्तित्व का अनुमान लगाना चाहिए। उन सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, अरहंत, सम्यक संबुद्ध द्वारा अनुभूत यह परिभोग-सामग्री आज भी विद्यमान है – चार स्मृतिप्रस्थान, चार सम्यक-प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पांच इंद्रियां, पांच बल, सात बोध्यंग और आर्य अष्टांगिक मार्ग। इन्हीं से विश्वास जमता है कि भगवान बुद्ध अवश्य हुए होंगे।

इसी प्रसंग में भदंत नागसेन ने भगवान द्वारा निर्मित 'धर्मनगर' का एक अत्यंत मनोरम, हृदयग्राही और विचित्र रूपक भी प्रस्तुत किया है।

इसी कांड का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रकरण है – 'धुतङ्गकथा'। इसके अंतर्गत राजा मिलिन्द ने यह जानना चाहा है कि क्या घरों में रहने वाले गृहस्थ लोग भी निर्वाण का साक्षात्कार कर सकते हैं? इस पर भदंत नागसेन ने उसे बतलाया कि बहुत बड़ी संख्या में ऐसे लोग निर्वाण का साक्षात्कार किये हुए हैं।

तब राजा ने यह जानना चाहा कि यदि ऐसा है, तो भिक्षु लोग धुतांग सिद्ध करने में क्यों लगे रहते हैं? क्या वैसा होने से धुतांग निरर्थक नहीं ठहरते?

इस पर भदंत ने धुतांगों के अट्ठाईस गुण बतलाये और धुतांगों का सम्यक प्रकार से सेवन करनेवालों को अठारह गुणों से युक्त होना बतलाया। इन दुष्कर व्रतों का निभाना हर किसी के बस की बात नहीं होती। इस प्रकार के व्यक्ति ही इन्हें निभा सकते हैं – श्रद्धालु, लजालु, धृतिमान, निष्कपट, उद्देश्य-रत, अचंचल, सीखने के लिए तत्पर, दृढ़-संकल्प, ध्यान-बहुल और मैत्री में विहार करने वाले। जो गृही इस जन्म में निर्वाण का साक्षात्कार कर लेते हैं, उन्होंने पूर्वजन्मों में कभी न कभी इन धुतांगों का पालन अवश्य किया होता है। स्थविर सारिपुत्त भी इन्हीं व्रतों से काया, वाणी और चित्त को नियंत्रित कर, अनंत गुणों से युक्त होकर, भगवान बुद्ध के शासन में धर्मचक्र के अनुप्रवर्तक हो पाये।

भदंत नागसेन ने प्रकरण-प्राप्त धुतांगों के नाम भी गिनाये हैं, जो संख्या में तेरह हैं।

(६) ओपम्मकथापञ्ह

इस कांड में राजा मिलिन्द का प्रश्न है कि कितने गुणों से युक्त हुआ भिक्षु अर्हत्पद का साक्षात्कार कर लेता है। इस बारे में भदंत नागसेन ने बतलाया कि

अर्हत्पद का साक्षात्कार करने के इच्छुक भिक्षु को प्राणिजगत एवं वस्तुजगत से इतने गुणों को ग्रहण करना चाहिए

गधे से एक, कौवे से दो, कमल से तीन, बैल से चार, समुद्र से पांच, सिंह से सात, सूर्य से आठ, इत्यादि।

तदनंतर भदंत ने इनमें से प्रत्येक गुण पर भी प्रकाश डाला है और आवश्यकतानुसार अपने कथन को भगवान बुद्ध अथवा उनके प्रमुख श्रावकों की उक्तियों से संवलित भी किया है।'गधे' के गुण का उदाहरण

जैसे गधा जहां कहीं लेटता है – चाहे वह कूड़े-करकट का अंबार हो, या चौक, या चौरस्ता, या ग्रामद्वार, या भूसे का ढेर – वहां वह बेखबर होकर नहीं सोता; वैसे ही योगसाधना करने वाला योगी जहां कहीं लेटे – चाहे तिनकों की चटाई हो, या पत्तों का बिछौना, या लकड़ी का तख्ता, या धरती – वहां वह बेखबर होकर न सोये। गधे का यह गुण उसमें होना चाहिए।

भगवान ने भी कहा है – 'भिक्षुओ! लकड़ी के लट्ठे को सिरहाना बना कर मेरे श्रावक अप्रमत्त और परिश्रमशील हो विहरते हैं।'

धर्मसेनापति सारिपुत्त ने भी कहा है – 'पालथी मार कर बैठे हुए भिक्षु के घुटनों तक भी वर्षा क्यों न हो जाय, दृढ-संकल्प भिक्षु के सुख-विहार के लिए विघ्नकारक नहीं होती है।'

☸